एडिटोरियल

(संग्रह)

फरवरी, 2020

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम **5**

- भारतीय संसदीय प्रणाली में सदन का अध्यक्ष 5
- पदोन्नति में आरक्षण 7
- दिल्ली का शिक्षा मॉडल 9
- न्यायाधीशों का विवेकाधिकार 11
- दोहरी नागरिकता और भारत 12
- संवैधानिक अधिकार और कर्त्तव्यों की व्यवस्था 16
- कल्याणकारी योजनाओं में आधार की भूमिका 19
- फार्मास्युटिकल दवाएँ और संबंधित मुद्दे 22

आर्थिक घटनाक्रम **26**

- मनरेगा कार्यक्रम- ग्रामीण प्रगति का वाहक 26
- भारतीय कृषि क्षेत्र: समस्या और उपाय 28
- 15वें वित्त आयोग की अंतरिम रिपोर्ट 30
- संरक्षणवाद की ओर भारत 31
- भारत और अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन 35

नोट :

दृष्टि The Vision

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम **35**

- अफगानिस्तान संघर्ष और भारत 37

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी **40**

- जल की गुणवत्ता: एक ज्वलंत मुद्दा 40

सामाजिक न्याय **44**

- स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढाँचा 44
- गर्भपात संबंधित नियमों में संशोधन 46
- मृत्युदंड की प्रासंगिकता 48
- विशेष विवाह अधिनियम और समलैंगिक विवाह 50
- भारत में कुपोषण : कारण और प्रयास 53
- सड़क दुर्घटना: कारण और प्रयास 55
- सशस्त्र बल और महिलाएँ 59

आंतरिक सुरक्षा **59**

- सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम 61

दृष्टि The Vision

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

भारतीय संसदीय प्रणाली में सदन का अध्यक्ष

संदर्भ

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने मणिपुर विधानसभा में विधायकों की अयोग्यता से संबंधित केशिम मेघचंद्र सिंह बनाम मणिपुर विधानसभा अध्यक्ष वाद पर चर्चा करते हुए सिफारिश की है कि सदन के अध्यक्ष के किसी एक राजनीतिक दल से विशेष संबंध को देखते हुए संसद को इस बात पर पुनर्विचार करना चाहिये कि लोकसभा या विधानसभा अध्यक्ष को एक अर्द्धन्यायिक प्राधिकारी के रूप में दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्य ठहराए जाने वाली याचिकाओं पर निर्णय लेने का अधिकार दिया जाना चाहिये या नहीं। ज्ञात हो कि कई अवसरों पर पक्षपात के आरोप में लोकसभा व विधानसभा अध्यक्षों की भूमिका पर प्रश्न उठाया जाता रहा है। किसी विशिष्ट राजनीतिक दल से संबंधित होने के कारण लोकसभा व विधानसभा अध्यक्ष सदैव ही संदेह के दायरे में रहते हैं। अध्यक्ष के पद से संबंधित उक्त विवादों को देखते हुए यह आवश्यक है कि पद को लेकर बड़े बदलाव किये जाएँ, ताकि लोकसभा व विधानसभा के प्रतिनिधि के रूप में अध्यक्ष पद की गरिमा बनाई रखी जा सके।

भारतीय संसदीय प्रणाली में अध्यक्ष

- संसद के प्रत्येक सदन का अपना एक पीठासीन अधिकारी होता है। राज्यसभा में इसे सभापति व लोकसभा में अध्यक्ष कहा जाता है। इसी प्रकार राज्य विधानमंडल के प्रत्येक सदन का भी अपना एक पीठासीन अधिकारी होता है। विधानसभा में इसे अध्यक्ष तथा विधानपरिषद में सभापति कहा जाता है। भारतीय सं सदीय लोकतंत्र में अध्यक्ष की भूमिका को काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है।
- लोकसभा अध्यक्ष के संदर्भ में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "अध्यक्ष सदन की गरिमा तथा उसकी स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है और चूँकि सदन राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिये अध्यक्ष एक प्रकार से राष्ट्र की स्वतंत्रता और स्वाधीनता का प्रतीक होता है।"
- सदन का अध्यक्ष सदन के प्रतिनिधियों का मुखिया तथा उनकी शक्तियों और विशेषाधिकारों का अभिभावक होता है।
- भारत के राजनीतिक इतिहास में ऐसे कई महत्त्वपूर्ण उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें सदन के अध्यक्षों ने महत्त्वपूर्ण निर्णय लेकर राज्य या राष्ट्र की राजनीति को प्रभावित किया है:
  - वर्ष 1988 में तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष पी.एच. पांडियन ने अपनी ही पार्टी- अन्नाद्रमुक (AIADMK) के छह वरिष्ठ मंत्रियों को अयोग्य ठहराया था।

संवैधानिक प्रावधान

- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 93 लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष की नियुक्ति का प्रावधान करता है, वहीं संविधान का अनुच्छेद 178 विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष की नियुक्ति के संबंध में प्रावधान करता है।
- संविधान के अनुच्छेद 94 में लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को पद रिक्त होने, पद त्याग देने या पद से हटाए जाने से संबंधित प्रावधान किये गए हैं, वहीं संविधान के अनुच्छेद 179 में विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के पद रिक्त होने, पद त्याग देने या पद से हटाए जाने से संबंधित प्रावधान किये गए हैं।
- अनुच्छेद 95 के अंतर्गत लोकसभा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने अथवा उसके दायित्वों का निर्वाह करने की उपाध्यक्ष या किसी अन्य व्यक्ति की शक्तियों का उल्लेख किया गया है, वहीं अनुच्छेद 180 के अंतर्गत विधानसभा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने अथवा उसके दायित्वों का निर्वाह करने की उपाध्यक्ष या किसी अन्य व्यक्ति की शक्तियों का उल्लेख किया गया है।
- संविधान के अनुच्छेद 96 (लोकसभा से संबंधित) और अनुच्छेद 181 (विधानसभा से संबंधित) के अनुसार, यदि सदन के अध्यक्ष को पद से हटाने से संबंधित कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो तो वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता।
- संविधान के अनुच्छेद 97 में लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और अनुच्छेद 186 में विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते संबंधी प्रावधान किये गए हैं।

नोट :

अध्यक्ष की भूमिका

- सदन का अध्यक्ष सदन का प्रधान प्रवक्ता होता है और सदन में सामूहिक मत का प्रतिनिधित्व करता है।
- दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता के मामलों सहित सभी संसदीय मामलों में अध्यक्ष का निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होता है, जिसे सामान्यत: न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार अध्यक्ष सदन में मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।
  - हालाँकि किहोतो होलोहन बनाम जाचिल्लू मामले (1993) में सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि दसवीं अनुसूची के तहत सदस्यों की अयोग्यता के संबंध में सदन के अध्यक्ष के निर्णय को न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।
- अध्यक्ष सदन की कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाने और उसे विनियमित करने के लिये सदन में व्यवस्था और शिष्टाचार बनाए रखने का कार्य भी करता है।
- अध्यक्ष को बहस के लिये अवधि आवंटित करने और सदन के सदस्यों को अनुशासित करने का अधिकार है। साथ ही वह सदन की विभिन्न समितियों द्वारा लिये गए निर्णयों को भी रद्द कर सकता है।
- सदन का अध्यक्ष सदन के कामकाज से संबंधित नियमों का अंतिम व्याख्याकार भी होता है।

पक्षपात का आरोप

- अध्यक्ष पद के साथ निहित तमाम अधिकारों और शक्तियों के कारण स्वतंत्रता और निष्पक्षता इस पद के लिये एक अनिवार्य शर्त हो जाती है। किंतु इसके बावजूद समय-समय पर अध्यक्ष पद पर राजनीतिक दल का एजेंट होने का आरोप लगाकर आलोचना की जाती है।
- वर्ष 2006 के जगजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निष्पक्षता के मामले में अध्यक्ष की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगाया था।
- किहोतो होलोहन बनाम जाचिल्लू मामले (1993) में सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने कहा था कि सदन के अध्यक्ष की निष्पक्षता पर संदेह से इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसका चुनाव और कार्यकाल सदन के बहुमत (या विशेष रूप से सत्ता पक्ष) पर निर्भर करता है।
- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अध्यक्ष की नियुक्ति के तरीके और कार्यालय संबंधी कुछ संरचनात्मक समस्याएँ हैं जिनका तत्काल निवारण किये जाने की आवश्यकता है।

उपाय

- आवश्यक है कि इस संदर्भ में वैश्विक स्तर पर प्रयोग होने वाली प्रथाओं का विश्लेषण किया जाए और भारतीय परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन कर उन्हें लागू करने का प्रयास किया जाए।
  - ब्रिटेन में सदन का अध्यक्ष अनिवार्य रूप से एक निर्दलीय सदस्य होता है। ब्रिटेन में यह परंपरा है कि अध्यक्ष को अपनी पार्टी से इस्तीफा देना होगा और राजनीतिक रूप से तटस्थ रहना होगा। इसके अलावा वह एक बार निर्वाचित होने पर सेवानिवृत्ति तक पद पर बना रहता है, भले ही सदन में उसके दल का बहुमत न रहे।
- न्यायालय ने हालिया केशिम मेघचंद्र सिंह बनाम मणिपुर विधानसभा अध्यक्ष वाद में एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण के गठन का सुझाव दिया है जो दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता से संबंधित मामलों को निपटने के लिये लोकसभा और विधानसभाओं के अध्यक्ष का स्थान लेगा।
  - इस स्वतंत्र न्यायाधिकरण का नेतृत्व सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा।
- निष्पक्षता और स्वायत्तता किसी भी मज़बूत संस्थान की पहचान होते हैं। अत: आवश्यक है कि सदन के अध्यक्ष पद की निष्पक्षता और स्वायत्तता को बरकरार रखा जाए।

आगे की राह

- हस्तक्षेप और दबाव से मुक्ति ही एकमात्र मार्ग है जिसके माध्यम से तटस्थता का वातावरण तैयार किया जा सकता है। किसी भी व्यक्ति को हस्तक्षेप और दबाव से मुक्त किये बिना उससे तटस्थ रहने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।
- नवीनतम लोकतंत्र सूचकांक में भारत की रैंकिंग में आई गिरावट नीति निर्माताओं के लिये चिंता का सबब बना हुआ है। ऐसे में भारतीय नीति निर्माताओं से यह उम्मीद की जा सकती है कि वे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए सुझावों पर ध्यान देंगे और इस संदर्भ में कम-से-कम समय में नियम बनाने का प्रयास करेंगे।

पदोन्नति में आरक्षण

संदर्भ

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तराखंड सरकार द्वारा दायर याचिका की सुनवाई करते हुए स्पष्ट किया है कि सार्वजनिक पदों पर 'प्रोन्नति में आरक्षण' मौलिक अधिकार नहीं है और राज्य को इस संदर्भ में बाध्य नहीं किया जा सकता। न्यायाधीश एल नागेश्वर राव और न्यायाधीश हेमंत गुप्ता की दो सदस्यीय पीठ ने अपने फैसले में कहा है कि न्यायालय राज्य सरकारों को पदोन्नति में आरक्षण प्रदान करने हेतु आदेश जारी नहीं कर सकता है। न्यायालय के अनुसार, यद्यपि संविधान का अनुच्छेद 16(4) और 16(4A) राज्य को अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिये प्रोन्नति में आरक्षण देने का अधिकार देता है किंतु ऐसा करना राज्य सरकारों के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है, हालाँकि यदि वे (राज्य) अपने विवेक का प्रयोग करते हुए पदोन्नति में आरक्षण प्रदान करना चाहते हैं तो उन्हें सार्वजनिक सेवाओं में उस वर्ग विशेष के प्रतिनिधित्व की अपर्याप्तता संबंधी मात्रात्मक डेटा एकत्र करना होगा। इस प्रकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के संबंध में आँकड़ों का संग्रहण आरक्षण प्रदान करने के लिये एक पूर्व आवश्यकता बन गया है। ऐसे में सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के उद्देश्य से स्थापित आरक्षण, विशेष तौर पर पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था का गहन विश्लेषण कर सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय के निहितार्थों को समझ लेना आवश्यक है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की पृष्ठभूमि

- दरअसल वर्ष 2012 में उत्तराखंड सरकार ने अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) को आरक्षण प्रदान किये बिना ही राज्य की लोक सेवा के सभी पदों में भर्ती की थी, जिसके पश्चात् उत्तराखंड सरकार के इस निर्णय को उत्तराखंड उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई।
- उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने मामले की सुनवाई करते हुए सरकार के निर्णय को खारिज कर दिया, किंतु राज्य सरकार ने अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए उत्तराखंड उच्च न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी।

पदोन्नति में आरक्षण के विषय में क्या कहता है संविधान?

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक पदों पर अवसर की समानता से संबंधित प्रावधान किये गए हैं।
  - अनुच्छेद 16(1) के अनुसार राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समानता होगी।
  - अनुच्छेद 16(2) के अनुसार, राज्य के अधीन किसी भी पद के संबंध में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इसमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जाएगा।
- हालाँकि संविधान के अनुच्छेद 16(4) और 16(4A) में सार्वजनिक पदों के संबंध में सकारात्मक भेदभाव या सकारात्मक कार्यवाही का आधार प्रदान किया गया है।
  - संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अनुसार, राज्य सरकारें अपने नागरिकों के उन सभी पिछड़े वर्ग के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण हेतु प्रावधान कर सकती हैं, जिनका राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।
  - अनुच्छेद 16(4A) के अनुसार, राज्य सरकारें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के पक्ष में पदोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिये कोई भी प्रावधान कर सकती हैं यदि राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

आरक्षण व्यवस्था और भारत

- भारत की सदियों पुरानी जाति व्यवस्था और छुआछूत जैसी कुप्रथाएँ देश में आरक्षण व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रमुख कारण हैं। सरल शब्दों में आरक्षण का अभिप्राय सरकारी नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों और विधायिकाओं में किसी एक वर्ग विशेष की पहुँच को आसान बनाने से है।
  - इन वर्गों को उनकी जातिगत पहचान के कारण ऐतिहासिक रूप से कई अन्यायों का सामना करना पड़ा है।
- वर्ष 1882 में विलियम हंटर और ज्योतिराव फुले ने मूल रूप से जाति आधारित आरक्षण प्रणाली की कल्पना की थी।
- आरक्षण की मौजूदा प्रणाली को सही मायने में वर्ष 1933 में पेश किया गया था जब तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमसे मैकडोनाल्ड ने सांप्रदायिक अधिनिर्णय दिया। विदित है कि इस अधिनिर्नयन के तहत मुसलमानों, सिखों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो-इंडियन, यूरोपीय और दलितों के लिये अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों का प्रावधान किया गया।

- आज़ादी के पश्चात् शुरुआती दौर में मात्र SC और ST समुदाय से संबंधित लोगों के लिये ही आरक्षण की व्यवस्था की गई थी, किंतु वर्ष 1991 में मंडल आयोग की सिफारिशों के आधार पर अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को भी आरक्षण की सीमा में शामिल कर लिया गया।

पदोन्नति में आरक्षण की पृष्ठभूमि

- नवंबर, 1992 को इंदिरा साहनी मामले में OBC आरक्षण पर फैसला देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने पदोन्नति में SC और ST समुदाय को दिये जा रहे आरक्षण पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए इसे पाँच वर्ष के लिये ही लागू रखने का आदेश दिया था।
- वर्ष 1992 में इंदिरा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद से ही यह मामला विवादों में है। हालाँकि वर्ष 1995 में संसद ने 77वाँ संविधान संशोधन पारित कर पदोन्नति में आरक्षण को जारी रखा था।
  - इस संशोधन में यह प्रावधान किया गया कि केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह पदोन्नति में भी आरक्षण दे सकती हैं। किंतु यह मामला फिर सर्वोच्च न्यायालय में चला गया।
  - तब न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि इस संदर्भ में आरक्षण तो दिया जा सकता है, लेकिन वरिष्ठता नहीं मिलेगी। इसके पश्चात् 85वाँ संविधान संशोधन पारित किया गया और इसके माध्यम से परिणामी ज्येष्ठता (Consequential Seniority) की व्यवस्था की गई।
- पदोन्नति में SC और ST की तत्कालीन स्थिति नागराज और अन्य बनाम भारत सरकार वाद पर सर्वोच्च न्यायालय के वर्ष 2006 के निर्णय के पश्चात् पुन: बदल गई।
- नागराज और अन्य बनाम भारत सरकार वाद में संसद द्वारा किये गए 77वें व 85वें संविधान संशोधनों को सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों द्वारा चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में इन संवैधानिक संशोधनों को तो सही ठहराया, किंतु पदोन्नति में आरक्षण के लिये तीन मापदंड निर्धारित कर दिये:
  - SC और ST समुदाय को सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा होना चाहिये।
  - सार्वजनिक पदों पर SC और ST समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न होना।
  - इस प्रकार की आरक्षण नीति का प्रशासन की समग्र दक्षता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।
- तत्पश्चात् वर्ष 2018 में जरनैल सिंह बनाम लक्ष्मी नारायण गुप्ता वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला देते हुए कहा कि पदोन्नति में आरक्षण के लिये राज्यों को अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के पिछड़ेपन से संबंधित मात्रात्मक डेटा एकत्र करने की आवश्यकता नहीं है।

पदोन्नति में आरक्षण के पक्ष में तर्क

- आरक्षण को एक प्रकार से सकारात्मक भेदभाव के रूप में देखा जाता है। सकारात्मक भेदभाव एक सरकारी नीति होती है जिसे कमज़ोर वर्गों के मध्य समानता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अपनाया जाता है, ताकि उन्हें सामाजिक अन्याय से सुरक्षा प्रदान की जा सके।
  - सामान्यत: इसका अर्थ रोज़गार और शिक्षा तक पहुँच में समाज के हाशिये के वर्गों को प्राथमिकता देने से होता है।
- हालाँकि आरक्षण के कारण विभिन्न स्तरों पर SC और ST समुदाय के प्रतिनिधित्व में बढ़ोतरी देखने को मिली है, किंतु वरिष्ठ स्तरों पर अब भी पक्षपात के कारण SC और ST समुदाय का प्रतिनिधित्व काफी कम है।
  - वर्ष 2017 के आँकड़े दर्शाते हैं कि उस वर्ष सचिव स्तर पर मात्र 4 अधिकारी ही SC और ST समुदाय से संबंधित थे।
- SC और ST समुदाय से संबंधित लोग 2,000 से भी अधिक वर्षों तक संपत्ति और शिक्षा जैसे अधिकारों से वंचित रहे हैं, उन्हें आज भी छुआछूत जैसी कुप्रथाओं और सामाजिक स्तर पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

पदोन्नति में आरक्षण के विपक्ष में तर्क

- आरक्षण में पदोन्नति के आलोचकों का मानना है कि आरक्षण का उद्देश्य सामाजिक स्तर सभी लोगों के साथ समान व्यवहार करना है, किंतु पदोन्नति में इसे लागू करने से यह विपरीत कार्य करता है और पहले से समान स्तर पर मौजूद लोगों के साथ असमानता का व्यवहार करता है।
- रोज़गार और पद प्राप्त करना सामाजिक भेदभाव की समाप्ति को सुनिश्चित नहीं करता है। अत: इसे पिछड़ेपन के आकलन हेतु एकमात्र साधन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिये।
- इस संदर्भ में कुछ आलोचकों का मानना है कि सार्वजनिक पदों पर आरक्षण देने से यह प्रशासन की दक्षता में कमी ला सकता है।

नोट :

आगे की राह

- वस्तुत: आरक्षण भारत में सदैव ही एक ज्वलंत मुद्दा रहा है और समय-समय पर इसको लेकर विवाद भी हुए हैं। विशेषज्ञों ने कई मौकों पर स्पष्ट किया है कि आरक्षण का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक स्तर पर समानता लाना नहीं था, बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक स्तर पर समानता लाना था।
- सार्वजनिक पदों पर पदोन्नति में आरक्षण से संबंधित अस्पष्टता से निपटने के लिये एक व्यापक कानून की आवश्यकता है। इस व्यापक कानून के माध्यम से मौजूदा अस्पष्ट विषयों जैसे- दक्षता का अपरिभाषित मापदंड और पिछड़ेपन के मूल्यांकन में परिदार्शिता का अभाव आदि को संबोधित किया जाना चाहिये।

दिल्ली का शिक्षा मॉडल

संदर्भ

आधुनिक भारत के निर्माण में महात्मा गांधी का बहुआयामी योगदान रहा है। गांधीजी की शिक्षा संबंधी विचारधारा उनके नैतिकता तथा स्वावलंबन संबंधी सिद्धांतों पर आधारित थी। गांधीजी का मानना था कि सच्ची शिक्षा वही है जो बच्चों के आध्यात्मिक, शारीरिक और बौद्धिक पहलू को उभारे और उसे प्रेरित करे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि गांधीजी की शिक्षा संबंधित विचारधारा सर्वंगीण विकास पर ज़ोर देती है। वर्ष 1930 में जब गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की तब नमक जैसी बुनियादी वस्तु के लिये पूरा देश उनके पीछे जा खड़ा हुआ। मौजूदा समय में देश के प्रत्येक नागरिक के लिये शिक्षा का वही महत्त्व है जो वर्ष 1930 में नमक का था। विगत वर्षों में दिल्ली के शिक्षा मॉडल ने दुनिया भर के तमाम विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।

शिक्षा का महत्त्व

पूर्व अमेरिकी राजनीतिज्ञ एडवर्ड इवरेट के अनुसार, "एक प्रशिक्षित सेना की अपेक्षा शिक्षित नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा अधिक बेहतर ढंग से कर सकते हैं।" शिक्षा समाज का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जो आधुनिक और औद्योगिक विश्व में बहुत अहम भूमिका अदा करती है। कई विद्वान मौजूदा प्रतिस्पर्द्धी युग में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिये शिक्षा को एक अनिवार्य साधन के रूप में देखते हैं। शिक्षा हमें न केवल अपनी समस्याओं के बेहतर एवं नवीन समाधान खोजने में मदद करती है बल्कि यह व्यक्ति विशेष के जीवन स्तर में सुधार करने और समाज को व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से चलाने में भी सहायक है। शिक्षा के माध्यम से गरीबी को समाप्त कर यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि देश का प्रत्येक नागरिक भारत के विकास में अपनी भूमिका अदा कर सके।

दिल्ली का शिक्षा मॉडल

देश में लंबे अरसे तक दो प्रकार के शिक्षा मॉडल ही प्रयोग किये जाते रहे हैं, पहला कुलीन वर्ग का शिक्षा मॉडल और दूसरा आम जनता का शिक्षा मॉडल। किंतु राजधानी में उक्त दो शिक्षा मॉडल्स के बीच के अंतर को कम करने का प्रयास किया गया है। विद्वानों के अनुसार, दिल्ली के शिक्षा मॉडल का दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना देश के सभी नागरिकों का अधिकार है। इस प्रकार दिल्ली में शिक्षा के एक ऐसे मॉडल का विकास किया गया है हो मुख्यत: 5 प्रमुख घटकों पर आधारित है।

- स्कूल के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन

दिल्ली के शिक्षा मॉडल का पहला घटक स्कूल के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन से संबंधित है। बुनियादी सुविधाओं की कमी से जूझ रहे स्कूल न केवल प्रशासन और सरकार की उदासीनता को दर्शाते हैं, बल्कि इनसे पढ़ने एवं पढ़ाने को लेकर छात्रों तथा शिक्षकों के उत्साह में भी कमी आती है। इस समस्या से निपटने के लिये दिल्ली सरकार ने सर्वप्रथम स्मार्ट बोर्ड, स्टाफ रूम, ऑडिटोरियम, प्रयोगशाला और पुस्तकालय जैसी आधुनिक सुविधाएँ प्रदान कीं। इसके साथ ही दिल्ली के अधिकांश विद्यालयों में आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित नई कक्षाओं का निर्माण किया गया। आँकड़ों के अनुसार, दिल्ली सरकार ने वर्ष 2017-18 में दिल्ली के विद्यालयों में कुल 10,000 कक्षाओं का निर्माण कराया था। ज्ञात हो कि दिल्ली सरकार ने अपने बजट का 25 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा के क्षेत्र में निवेश किया है। इसके अलावा सरकार ने प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों से स्कूलों की स्वच्छता, रख-रखाव और मरम्मत आदि के बोझ को कम करने के लिये सभी स्कूलों में एक प्रबंधक की नियुक्ति की है। इस प्रकार के अधिकांश प्रबंधक सेवानिवृत्त सैनिक हैं।

- शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों का क्षमता निर्माण

शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था दिल्ली के शिक्षा मॉडल का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके तहत शिक्षकों को उनके विकास के अवसर भी प्रदान किये गए। दिल्ली के सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों को कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी और IIM अहमदाबाद जैसे उत्कृष्ट संस्थानों में कार्यरत विद्वानों से सीखने का अवसर प्रदान किया गया। वर्ष 2016 में प्रधानाध्यापक नेतृत्व विकास कार्यक्रम की शुरुआत की गई। इस कार्यक्रम के तहत 10 प्रधानाध्यापकों का एक समूह प्रत्येक माह में एक बार विद्यालय में नेतृत्त्व संबंधी चुनौतियों पर चर्चा करते हैं और संयुक्त स्तर पर उनसे निपटने के लिये उपायों की तलाश करते हैं।

- विद्यालय प्रशासन को जवाबदेह बनाना

दिल्ली के सरकारी विद्यालय मुख्य रूप से अपनी अनुशासनहीनता के लिये काफी प्रसिद्ध थे। इस चुनौती से निपटने के लिये दिल्ली सरकार ने त्रि-स्तरीय निगरानी एवं निरीक्षण तंत्र स्थापित किया, जिसमें शिक्षा मंत्री ने स्वयं विद्यालयों का निरीक्षण किया। इसके अलावा शिक्षा निदेशालय (DoE) के ज़िला अधिकारियों ने अपने ज़िलों के अंतर्गत आने वाले स्कूलों के प्रबंधन की निगरानी और ट्रैकिंग भी की। अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर पर स्कूल प्रबंधन समितियों (School Management Committees-SMC) का पुनर्गठन किया गया। मौजूदा समय में सभी SMCs का वार्षिक बजट लगभग 5-7 लाख रुपए है। साथ ही SMC को यह छूट दी गई है कि वे इस धन को किसी भी सामग्री या गतिविधि पर खर्च कर सकते हैं।

- पाठ्यक्रम में सुधार

वर्ष 2016 के आँकड़ों के अनुसार, दिल्ली के सरकारी विद्यालयों में 9वीं कक्षा में असफलता दर 50 प्रतिशत से भी अधिक है। आधारभूत कौशल के अभाव को सर्वसम्मति से इसका मुख्य कारण स्वीकार किया गया। नियमित शिक्षण गतिविधियों की शुरुआत की गई, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी बच्चे पढ़ना, लिखना और बुनियादी गणित का कौशल सीखें। इसी प्रकार नर्सरी से कक्षा 8 तक के बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य हेतु 'हैप्पीनेस पाठ्यक्रम' की शुरुआत की गई है। कक्षा 9 से 12 तक के बच्चों में समस्या-समाधान और विचार क्षमताओं को विकसित करने के लिये 'उद्यमशीलता पाठ्यक्रम' की शुरुआत की गई है।

- निजी विद्यालयों की फीस में स्थिरता

उल्लेखनीय है कि उक्त चारों घटकों ने केवल दिल्ली के सरकारी विद्यालयों को प्रभावित किया जबकि दिल्ली के निजी विद्यालयों में भी काफी अधिक संख्या में विद्यार्थी मौजूद हैं। पहले अक्सर यह देखा जाता था कि दिल्ली के सभी निजी स्कूल वार्षिक आधार पर अपनी फीस में 8-15 प्रतिशत की वृद्धि करते थे। दिल्ली सरकार ने सभी निजी विद्यालयों के लिये यह अनिवार्य किया कि वे फीस प्रस्ताव को लागू करने से पूर्व किसी भी एक अधिकृत चार्टर्ड एकाउंटेंट (CA) से उसकी जाँच कराएंगे।

'चुनौती' योजना

- वर्ष 2016 में सरकार ने दिल्ली के विद्यालयों में ड्रॉपआउट दर को देखते हुए 'चुनौती' योजना की शुरुआत की। इस पहल के तहत छात्रों को हिंदी और अंग्रेजी पढ़ने या लिखने तथा गणित के प्रश्न हल करने के आधार पर समूहों में विभाजित किया गया।
- उनकी सीखने की क्षमताओं के आधार पर, उन्हें सरकारी स्कूलों में 'विशेष कक्षाएं' प्रदान की जाती हैं। यह योजना मूल रूप से नोबेल पुरस्कार विजेता अभिजीत बनर्जी के मॉडल पर आधारित थी।

आगे की राह

- दिल्ली के शिक्षा मंत्री ने कहा कि "पहले चरण में हमारा लक्ष्य शिक्षा के आधार को निर्मित करना था, किंतु शिक्षा मॉडल के दूसरे चरण में हमारा उद्देश्य शिक्षा को आधार को रूप में विकसित करना होगा।" साथ ही सरकार ने विद्यालयों में 'देशभक्ति' के पाठ्यक्रम को जोड़ने की घोषणा भी की है।
- दिल्ली के विद्यार्थियों के मध्य समीक्षात्मक सोच, समस्या समाधान और ज्ञान के अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिये दिल्ली शिक्षा बोर्ड के गठन पर भी विचार किया जा रहा है।
- चूँकि सरकार ने शिक्षा को अपने प्राथमिक एजेंडे में शामिल कर लिया है, इसलिये आम जनता की सरकार से स्वाभाविक अपेक्षा यह सुनिश्चित करना होगी कि राज्य के सभी बच्चे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और समान अवसर प्राप्त कर सकें।

नोट :

न्यायाधीशों का विवेकाधिकार

संदर्भ

विश्व भर के अधिकांश उदार लोकतंत्रों में न्यायपालिका को अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के लिये न्याय सुनिश्चित करने हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण प्राधिकरण माना जाता है और भारतीय न्यायपालिका इस विषय में विश्व में सर्वाधिक सक्रिय और शक्तिशाली है। भारत के सभी न्यायालय देश के अनुभवी न्यायाधीशों से भरे हुए हैं, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा संविधान के नियमों के अनुसार नियुक्त किया जाता है। भारतीय संविधान के तहत न्यायाधीशों को काफी अधिक शक्ति प्रदान की गई है, साथ ही उनसे निष्पक्ष और तटस्थ होने की उम्मीद भी की गई है। हालाँकि मानवीय प्रकृति के कारण न्यायाधीशों की निष्पक्षता और तटस्थता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने का खतरा सदैव बना रहता है। किंतु कई अवसरों पर ऐसा देखा गया है कि न्यायाधीशों ने ऐसी स्थिति में अपने विवेक का प्रयोग करते हुए स्वयं को मामले से अलग करने का निर्णय भी लिया है। संविधान के अंतर्गत इस संबंध कोई भी लिखित प्रावधान न होने के कारण कई बार न्यायाधीशों के इस विवेकाधिकार पर प्रश्नचिह्न लगा है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जस्टिस मोहन एम. शांतनगौदर ने जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला को सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम के तहत हिरासत में लिये जाने को लेकर उनकी बहन सारा अब्दुल्ला पायलट द्वारा दायर याचिका पर सुनवाई से खुद को अलग कर लिया। हालाँकि उन्होंने इस संदर्भ में कोई विशेष कारण नहीं दिया है, जिससे यह विषय एक बार पुन: चर्चा में आ गया है।

सुनवाई से खुद को अलग करने संबंधी प्रावधान

- भारतीय संविधान के तहत न्यायाधीशों के लिये न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध मामलों की सुनवाई से खुद को अलग करने को लेकर किसी प्रकार का कोई लिखित नियम नहीं है। यह पूर्ण रूप से न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है।
- साथ ही न्यायाधीशों को इस संबंध में कारणों का खुलासा करने की ज़रूरत भी नहीं होती है।
- कई बार न्यायाधीशों के हितों का टकराव मामले की सुनवाई से खुद को अलग करने का सबसे मुख्य कारण होता है। उदाहरण के लिये यदि कोई मामला उस कंपनी से संबंधित है जिसमें न्यायाधीश का हिस्सा भी है तो उस न्यायाधीश की निष्पक्षता पर आशंका ज़ाहिर की जा सकती है।
- इसी प्रकार यदि न्यायाधीश ने पूर्व में मामले से संबंधित किसी एक पक्ष का वकील के तौर पर प्रतिनिधित्व किया हो तो भी न्यायाधीश की निष्पक्षता पर शंका उत्पन्न हो सकती है।
- यदि मामले के किसी एक पक्ष के साथ न्यायाधीश का व्यक्तिगत हित जुड़ा हो तब भी न्यायाधीश अपने विवेकाधिकार का उपयोग मामले की सुनवाई से अलग होने का निर्णय कर सकते हैं।
- हालाँकि उक्त सभी स्थितियों में मामले से अलग होने अथवा न होने का निर्णय न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है।

इस संबंध में अन्य मामले

- इस संबंध में सबसे पहला मामला वर्ष 1852 में सामने आया था, जहाँ लॉर्ड कॉटनहैम ने स्वयं को डिम्स बनाम ग्रैंड जंक्शन कैनाल (Dimes vs Grand Junction Canal) वाद की सुनवाई से अलग कर लिया था, क्योंकि लॉर्ड कॉटनहैम के पास मामले में शामिल कंपनी के कुछ शेयर थे।
- वर्ष 2018 में जज लोया मामले में याचिकाकर्त्ताओं ने मामले की सुनवाई कर रहे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, जस्टिस ए.एम. खानविल्कर और डी. वाई. चंद्रचूड़ को सुनवाई से अलग करने का आग्रह किया था, क्योंकि वे दोनों ही बंबई उच्च न्यायालय से थे। हालाँकि न्यायालय ने ऐसा करने इनकार करते हुए स्पष्ट किया था कि यदि ऐसा किया जाता है तो इसका अर्थ होगा कि न्यायालय अपने कर्तव्यों का त्याग कर रहा है।
- बीते वर्ष केंद्रीय जाँच ब्यूरो (CBI) के अंतरिम निदेशक के रूप में एम. नागेश्वर राव की नियुक्ति को चुनौती देना वाली याचिका की सुनवाई करते हुए मामले से संबंधित तीन न्यायाधीशों ने स्वयं को मामले से अलग कर लिया था।
  - सर्वप्रथम तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई ने यह कहते हुए स्वयं को मामले से अलग कर लिया कि वे नए CBI निदेशक को चुनने हेतु गठित समिति का हिस्सा थे।

- रंजन गोगोई के स्थान पर मामले की सुनवाई करने के लिये जस्टिस ए.के. सीकरी को नियुक्त किया गया। किंतु जस्टिस ए.के. सीकरी ने भी यह कहते हुए स्वयं को मामले से अलग कर लिया कि वे उस पैनल का हिस्सा थे जिसने पिछले CBI निदेशक आलोक वर्मा को उनके पद से हटाने का निर्णय लिया था।
- इसके पश्चात् मामले से संबंधित एक अन्य न्यायाधीश जस्टिस एन. वी. रमाना ने भी व्यक्तिगत कारणों का हवाला देते हुए स्वयं को मामले से अलग कर लिया।

संबंधित समस्याएँ

- न्यायिक प्रथाओं के अनुसार, न्यायाधीशों को किसी भी विशिष्ट मामले से स्वयं को अलग करने के कारणों का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं होती है, जिसके कारण इस संबंध में न्यायाधीशों की विवेकाधिकार की शक्ति पर अनावश्यक प्रश्नचिह्न लगते हैं।
- कारणों की लिखित व्याख्या मौजूद न होने के कारण यह निश्चित करना अपेक्षाकृत काफी मुश्किल होता है कि इस प्रकार के निर्णय की आवश्यकता थी या नहीं?
- यदि मामले की सुनवाई करने के लिये न्यायालय द्वारा गठित पीठ से कोई एक न्यायाधीश भी स्वयं को मामले से अलग कर लेता है तो इससे मामले में अनिवार्य रूप से देरी होती है। क्योंकि मामला पुनः मुख्य न्यायाधीश के पास जाता है और वे मामले की सुनवाई के लिये पुनः किसी को नियुक्त करते हैं।
- पद की शपथ लेते समय सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश किसी भी परिस्थिति में अपने कर्तव्यों को निभाने तथा बिना किसी डर, पक्षपात एवं द्वेष भावना के न्याय करने का निश्चय करते हैं।
    - इंग्लैंड के एक पूर्व न्यायाधीश स्टीफन सेडली ने लिखा है कि 'डर और पक्षपात' किसी भी न्यायाधीश की स्वतंत्रता के दुश्मन होते हैं, अतः हमें डर तथा पक्षपात से बचने के यथासंभव प्रयास करना चाहिये।
- इससे मामले से संबंधित पक्षों को अपनी पसंद की पीठ चुनने का अवसर मिलता है, जो कि स्पष्ट तौर पर न्यायिक निष्पक्षता के विरुद्ध है।

आगे की राह

- वरिष्ठ वकीलों और विशेषज्ञों का मानना है कि न्यायाधीशों को किसी भी मामले की सुनवाई से स्वयं को अलग करने के कारणों का लिखित स्पष्टीकरण देना चाहिये, चाहे वे व्यक्तिगत कारण हों या सार्वजनिक कारण।
- वर्ष 1999 में दक्षिण अफ्रीका की संवैधानिक न्यायलय ने कहा था कि "न्यायिक कार्य की प्रकृति में कई बार कठिन और अप्रिय कार्यों का प्रदर्शन भी शामिल होता है और इन्हें पूरा करने के लिये न्यायिक अधिकारी को दबाव के सभी तरीकों का विरोध करना चाहिये।"
- बिना किसी डर और पक्षपात के न्याय प्रदान करना सभी न्यायिक अधिकारियों का कर्तव्य है। यदि वे विचलित होते हैं तो इससे न्यायपालिका और संविधान की स्वतंत्रता प्रभावित होती है।

दोहरी नागरिकता और भारत

संदर्भ

किसी भी राज्य में व्यक्ति की पहचान का सशक्त माध्यम नागरिक पहचान है जिसे औपचारिक रूप से नागरिकता की संज्ञा दी जाती है। आधुनिक राज्य की संरचना में नागरिक पहचान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहचान की तुलना में प्रभावशाली ढंग से स्थापित हुई है। नागरिकता राज्य और व्यक्ति के मध्य एक औपचारिक संबंध स्थापित करती है। यह औपचारिक संबंध ही राज्य और व्यक्ति दोनों को एक दूसरे के प्रति विधिक रूप से उत्तरदायी बनाता हैं।

अतः स्पष्ट है कि नागरिकता का मुख्य ज़ोर अधिकार और कर्त्तव्यों पर है। ऐसे में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जो लोग बिना नागरिकता के जीवनयापन कर रहे हैं उनके सम्मुख न केवल राज्यविहीनता (Stateless) बल्कि अस्तित्व का भी संकट विद्यमान है। नागरिकता और राज्यविहीनता के मुद्दे को संबोधित करते हुए अपनाए गए नागरिकता संशोधन अधिनियम-2019 के आलोक में भारत में नागरिकता संबंधी प्रावधान और श्रीलंकाई तमिल शरणार्थियों की समस्या का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा।

श्रीलंकाई तमिल शरणार्थियों का मुद्दा

- भारत में श्रीलंकाई तमिलों को अनिवासी श्रीलंकाई तमिलों के रूप में जाना जाता है। 19वीं-20वीं शताब्दी में श्रीलंकाई तमिलों के पूर्वजों का व्यापार करने के उद्देश्य से भारत आगमन हुआ लेकिन बाद में जातीय दंगों और गृहयुद्ध की विभीषिका से बचने के लिये भी उन्होंने भारत में शरण ली।
- बेहतर सामाजिक-आर्थिक अवसरों की उपलब्धता के कारण श्रीलंकाई तमिल भारत के तमिलनाडु राज्य में बसने लगे। तमिलनाडु में इन्हें आज भी सीलोन या जाफना तमिल के नाम से जाना जाता है।
- वर्ष 1948 में श्रीलंका को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तत्पश्चात श्रीलंकाई संसद ने सीलोन नागरिकता अधिनियम नामक एक विवादास्पद कानून पारित किया जिसमें दक्षिण भारतीय मूल के तमिलों के साथ जानबूझकर भेदभाव किया गया।
- इस अधिनियम ने उनके लिये नागरिकता प्राप्त करना लगभग असंभव बना दिया जिसके कारण तकरीबन 700,000 तमिल राज्यविहीन हो गए।
- ऐसी परिस्थिति में वर्ष 1964 में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री और श्रीलंकाई प्रधानमंत्री सिरिमावो भंडारनाईके के बीच तमिलों की वापसी को लेकर एक समझौता हुआ।
- इस समझौते के तहत बड़ी संख्या में तमिल शरणार्थियों की श्रीलंका में वापसी हुई है परंतु बाद के वर्षों में दंगे और गृहयुद्ध जैसी परिस्थितियों के कारण इनका प्रत्यावर्तन रुक गया।
- वर्ष 1980-90 के दशक में श्रीलंका से रोज़गार, शिक्षा, परिवार आदि के कारण बड़ी संख्या मुं श्रीलंकाई तमिलों ने वैधानिक मार्ग का पालन न करते हुए समुद्र के रास्ते भारत में प्रवेश करते हैं, जिन्हें भारत सरकार अवैध प्रवासी मानती है।

शरणार्थी एवं प्रवासी के मध्य अंतर

- शरणार्थी अपने देश में उत्पीड़न अथवा उत्पीड़ित होने के भय के कारण वहाँ से भागने को मज़बूर होते हैं। जबकि प्रवासी का अपने देश से पलायन विभिन्न कारणों जैसे-रोज़गार, परिवार, शिक्षा आदि के कारण भी हो सकता है किंतु इसमें उत्पीड़न शामिल नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रवासी (चाहे अपने देश में हो अथवा अन्य देश में) को उसके स्वयं के देश द्वारा विभिन्न प्रकार के संरक्षण का लाभ प्राप्त होता रहता है।
- वर्ष 2019 में पारित नागरिकता संशोधन कानून से श्रीलंकाई शरणार्थियों को बाहर रखने तथा कुछ राजनीतिक दलों द्वारा उन्हें दोहरी नागरिकता देने संबंधी मांग ने एक बार फिर यह मुद्दा चर्चा के केंद्र में ला दिया है, अत: ऐसी स्थिति में भारतीय नागरिकता संबंधी प्रावधानों पर विमर्श करना अति आवश्यक हो जाता है।

भारतीय नागरिकता

- संविधान के भाग-II में अनुच्छेद 5 से 11 तक नागरिकता संबंधी उपबंध किये गए हैं। इस संबंध में नागरिकता अधिनियम 1955 लागू किया गया जिसमें समय-समय पर संशोधन किया गया है।
- नागरिकता अधिनियम, 1955 द्वारा नागरिकता अर्जन की निम्न शर्तें उपबंधित की गई-
  - जन्म के आधार पर,
  - वंशक्रम के आधार पर,
  - पंजीकरण के आधार पर,
  - देशीयकरण के आधार पर,
  - क्षेत्र समाविष्ट के आधार पर,

नागरिकता की समाप्ति

- नागरिकता अधिनियम, 1955 के अनुसार नागरिकता से वंचित करने की तीन स्थितियाँ बताई गई हैं-
  - स्वैच्छिक त्याग द्वारा,
  - बर्खास्तगी द्वारा,
  - वंचन के आधार पर

नोट :

नागरिकता का स्वरूप

- यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी राजपद्धति (केंद्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात भारतीय नागरिकता। यहाँ राज्यों के लिये कोई पृथक नागरिकता की व्यवस्था नहीं है। अन्य संघीय राज्यों, जैसे- अमेरिका एवं स्विट्ज़रलैंड में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है।
- दोहरी नागरिकता की व्यवस्था भेदभाव की समस्या पैदा कर सकती है। यह भेदभाव मताधिकार, सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति, व्यवसाय आदि को लेकर हो सकता है। वर्तमान में तमिल शरणार्थियों के लिये दोहरी नागरिकता की मांग की जा रही है, चूँकि भारत में दोहरी नागरिकता की अवधारणा का कोई संवैधानिक आधार नहीं है, इसलिये वर्ष 2000 में गठित एल.एम.सिंघवी समिति की सिफारिश पर आपातकालीन परिस्थितियों से निपटने के लिये भारतीय मूल के व्यक्तियों को दोहरी नागरिकता प्रदान करने का उपबंध किया गया।
- समिति की अनुशंसाओं पर विचार करते हुए सरकार ने नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2003 में विदेशी भारतीय नागरिकता (Overseas Citizens of India-OCI) का प्रावधान किया। इसे दोहरी नागरिकता के सीमित संस्करण के रूप में देखा गया।

विदेशी भारतीय नागरिकता

- नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2003 में प्रावधानित विदेशी भारतीय नागरिकता के अंतर्गत पाकिस्तान और बांग्लादेश को छोड़कर 16 निर्दिष्ट देशों के भारतीय मूल के व्यक्तियों को विदेशी भारतीय नागरिकता प्रदान की गई।
- नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2005 में सभी देशों के भारतीय मूल के व्यक्तियों को विदेशी भारतीय नागरिकता प्रदान करने के (पाकिस्तान और बांग्लादेश को छोड़कर) प्रावधान शामिल किये गए।
- पुन: नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2015 ने मुख्य अधिनियम में विदेशी भारतीय नागरिकता संबंधी प्रावधानों को संशोधित कर दिया। इसने 'विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक' (Overseas Citizens of India Cardholder) के नाम से एक नई योजना शुरू की जिसमें भारतीय मूल के व्यक्ति (Persons of Indian Origin-PIO) और विदेशी भारतीय नागरिकता कार्ड संबंधी योजनाओं का आपस में विलय कर दिया।

विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक

- भारत सरकार आवेदन प्राप्त होने पर किसी विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारक को नागरिकता के लिये पंजीकृत कर सकती है। पंजीकरण की निम्नलिखित शर्तें निर्धारित की गई हैं-
  - पूर्ण आयु क्षमता वाला कोई व्यक्ति

    (I) किसी अन्य देश का नागरिक है, लेकिन संविधान लागू होने के समय अथवा उसके बाद भारत का नागरिक था, अथवा

    (II) किसी अन्य देश का नागरिक है लेकिन संविधान लागू होने के समय भारत का नागरिक होने के लिये अर्ह था, अथवा

    (III) किसी अन्य देश का नागरिक है लेकिन उस भू-भाग से संबंध रखता है जो 15 अगस्त 1947 से भारत का भाग हो गया, अथवा

    (IV) जो किसी नागरिक का पुत्र/पुत्री या पौत्र/पौत्री या प्रपौत्र/प्रपौत्री हो,
  - कोई व्यक्ति जो निर्दिष्ट व्यक्ति का नाबालिक बच्चा हो, अथवा
  - कोई नाबालिक बच्चा जिसके माता-पिता दोनों या दोनों में से कोई एक भारत का नागरिक हो, अथवा
  - भारतीय नागरिक की विदेशी मूल का/की पति/पत्नी किसका विवाह निबंधित है और आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि के पूर्व कम-से-कम दो वर्ष तक लगातार रहा हो।
- भारत सरकार उस आँकड़े/डाटा को उल्लिखित कर सकती है जिसमे से सूचीबद्ध भारतीय मूल के कार्डधारक व्यक्तियों को विदेशी भारतीय कार्डहोल्डर मान लिया जाएगा।

कार्डधारकों को प्राप्त सुविधाएँ

- जीवनपर्यंत वीज़ा
- अनिश्चित समय तक की यात्रा के दौरान भी पंजीकरण कराने की आवश्यकता नहीं।
- ठहरने की किसी भी अवधि तक पुलिस प्राधिकारियों को रिपोर्ट करने से छूट।

नोट :

- पंजीकृत विदेशी भारतीय नागरिक कार्डधारकों को घरेलू उड़ानों के किराए के मामले में अप्रवासी भारतीय के बराबर समझा जाएगा।

कार्डधारकों का पंजीकरण रद्द होने की शर्तें

- यदि OCI पंजीकरण में कोई धोखाधड़ी सामने आती है।
- यदि पंजीकरण के पाँच साल के भीतर OCI कार्डधारक को दो साल या उससे अधिक समय के लिये कारावास की सज़ा सुनाई गई है।
- यदि ऐसा करना भारत की संप्रभुता और सुरक्षा के लिये आवश्यक हो।
- हाल ही में पारित नागरिकता संशोधन अधिनियम, (Citizenship Amendment Act, 2019) में OCI कार्डधारक के पंजीकरण को रद्द करने के लिये एक और आधार जोड़ा गया है, जिसके तहत यदि OCI कार्डधारक अधिनियम के प्रावधानों या केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित कोई अन्य कानून का उल्लंघन करता है तो भी केंद्र के पास उस OCI कार्डधारक के पंजीकरण को रद्द करने का अधिकार होगा।

शरणार्थियों की अपेक्षाएँ

- तमिल शरणार्थी भारत से नागरिकता देने की अपेक्षा रखते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा डर है कि यदि वे श्रीलंका वापस लौटते हैं तो सिंघली बौद्ध समुदाय के उत्पीड़न का शिकार हो सकते हैं।
- अधिकांश भारतीय मूल के तमिलों की भारत में पैतृक जड़ें, रिश्तेदार और संपत्ति हैं।
- शरणार्थी शिविरों को संकटग्रस्त लोगों के लिये अस्थायी व्यवस्था के रूप में बनाया गया था। श्रीलंका में स्थिति सामान्य होने पर इन शरणार्थियों को वापस लौटना था परंतु ऐसा संभव न हो सका, इसलिये इन्हें मानवीय आधार पर भारतीय नागरिकता दी जानी चाहिये।

तमिल शरणार्थियों की संख्या

- तमिलनाडु के 107 कैंपों में लगभग 19,000 तमिल परिवारों के 60,000 शरणार्थी निवास कर रहे हैं।
- अगस्त 2019 तक उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, शरणार्थी शिविरों में आठ वर्ष से कम आयु के 10,000 बच्चों की उपस्थिति पाई गई।

भारत के समक्ष चुनौतियाँ

- भारतीय संविधान में दोहरी नागरिकता जैसी व्यवस्था नहीं है, इसलिये भारत तमिल शरणार्थियों को दोहरी नागरिकता नहीं दे सकता है।
- भारत के पास सीमित आर्थिक संसाधन हैं जिनसे देश के नागरिकों की ही आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।
- भारत के सम्मुख श्रीलंका से आए तमिल शरणार्थियों तथा अवैध प्रवासियों की पहचान सुनिश्चित करने का संकट है।
- शरणार्थी शिविरों में रह रहे लोग आर्थिक रूप से विपन्न होते हैं इसलिये ये देश विरोधी तत्वों के झाँसे में आसानी से आ जाते हैं।
- शरणार्थियों की उपस्थिति के कारण क्षेत्र विशेष में जनसांख्यिकी बदलाव होने की भी आशंका रहती है।

समाधान के उपाय

- इस समस्या के समाधान के लिये प्रभावित देशों तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को मिलकर कार्य करना चाहिये जिससे मानवीय गरिमा, मानवाधिकार तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अनुरूप नीति का विकास कर लोगों की मदद की जा सके।
- भारत को शरणार्थियों और अवैध प्रवासियों को उनके मूल देश में वापस भेजने के लिये श्रीलंका के साथ प्रभावी प्रत्यावर्तन समझौते की कोशिश करनी चाहिये।
- भारत सरकार को वैध यात्रा दस्तावेज़ों के साथ आए तमिल शरणार्थियों को सीमित रूप से नागरिकता देने के संबंध में विचार करना चाहिये।

आगे की राह

- भारत वैश्विक आकांक्षाओं के साथ एक उभरती शक्ति है और शरणार्थियों की समस्या का पहले भी कई बार सामना कर चुका है। ऐसे में उसे उदारवादी नज़रिया अपनाने की ज़रूरत है।
- अंत में यही कहा जा सकता है कि भारत शरणार्थियों सहित विश्व को प्रभावित करने वाले अन्य उभरते मुद्दों पर क्षेत्रीय और वैश्विक प्रयासों को आकार देने के लिये बेहतर स्थिति में हो सकता है।

नोट :

संवैधानिक अधिकार और कर्त्तव्यों की व्यवस्था

संदर्भ

किसी भी लोकतांत्रिक देश की संवैधानिक व्यवस्था में नागरिकों और व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास के लिये कुछ मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था की गई है। स्वतंत्रता से पूर्व औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय लोगों के साथ किया गया अमानवीय व्यवहार, भारत में जातिगत व्यवस्था के अंतर्गत व्याप्त भेदभाव तथा स्वतंत्रता के दौरान होने वाले धार्मिक दंगों ने मानवीय गरिमा को छिन्न-भिन्न कर दिया था। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगा था। ऐसी स्थिति में संविधान निर्माताओं के समक्ष देश की एकता-अखंडता, मानवीय गरिमा को स्थापित करने तथा लोगों में परस्पर विश्वास बहाल करने की चुनौती थी। इस चुनौती को स्वीकार करते हुए संविधान निर्माताओं ने सार्वभौमिक अधिकारों की व्यवस्था की। संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक उपलब्ध अधिकारों को मूल अधिकारों की संज्ञा दी गई।

प्रारंभ में संविधान के अंतर्गत नागरिकों के लिये मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं की गई थी, परंतु समय के साथ समाज में असामाजिक व देश विरोधी तत्त्वों की गतिविधियों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप ऐसी गतिविधियों के प्रति नागरिकों को जागरूक करने तथा उनमें कर्त्तव्यबोध की भावना का प्रसार करने के लिये वर्ष 1976 में संविधान के भाग-4 क में अनुच्छेद-51 क के अंतर्गत मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई। हाल ही में नई दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक सम्मेलन-2020 में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने मूल कर्त्तव्यों पर सभी का ध्यान आकर्षित किया और इस विषय को चर्चा के केंद्र में ला दिया।

मूल अधिकार से तात्पर्य

- मूल अधिकारों से तात्पर्य राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों की उन्नति से है। ये अधिकार देश में व्यवस्था बनाए रखने के साथ ही राज्य के कठोर नियमों के विरुद्ध नागरिकों को स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। ये विधानमंडल द्वारा पारित कानून के क्रियान्वयन पर तानाशाही को मर्यादित करते हैं। इनके प्रावधानों का उद्देश्य कानून का राज स्थापित करना है न कि व्यक्तियों का।
- संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति के लिये मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है। इनमे प्रत्येक व्यक्ति के लिये समानता, सम्मान, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय एकता को समाहित किया गया है।
- ये विधि के मूल सिद्धांत हैं। ये 'मूल' इसलिये भी हैं क्योंकि व्यक्ति के चहुंमुखी विकास (भौतिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक) के लिये आवश्यक है।

संविधान में प्रदत्त मूल अधिकार

- समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
- संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

मूल अधिकारों की विशेषताएँ

- मूल अधिकार वाद योग्य हैं। राज्य उन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। हालाँकि प्रतिबंधों के औचित्य का निर्धारण न्यायालय द्वारा ही किया जाता है।
- ये सरकार के एकपक्षीय निर्णय के विरुद्ध उपलब्ध हैं। हालाँकि उनमें से कुछ निजी व्यक्तियों के विरुद्ध भी उपलब्ध हैं।
- इनमें से कुछ नकारात्मक विशेषताओं वाले होते हैं, जैसे-राज्य के प्राधिकार को सीमित करने से संबंधित, जबकि कुछ सकारात्मक होते हैं, जैसे-व्यक्तियों के लिये विशेष सुविधाओं का प्रावधान।
- ये स्थायी नहीं हैं। संसद संविधान संशोधन के माध्यम से इनमें कटौती या कमी कर सकती है।
- राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान (अनुच्छेद 20 व 21 को छोड़कर) इन्हें निलंबित किया जा सकता है।
- इन्हें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गारंटी व सुरक्षा प्रदान की जाती है।

मूल अधिकारों का महत्त्व

- ये देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करते हैं।
- ये वैयक्तिक स्वतंत्रता के रक्षक हैं।
- देश में विधि के शासन की व्यवस्था करते हैं।
- सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की आधारशिला रखते हैं।
- ये अल्पसंख्यकों एवं समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों की रक्षा करते हैं।

आलोचना के बिंदु

- मूल अधिकार असंख्य अपवादों, प्रतिबंधों एवं व्याख्याओं के विषय हैं।
- इसमें मुख्यत: राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख है, सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था का अभाव है क्योंकि सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम पाने का अधिकार, विश्राम एवं सुविधा का अधिकार जैसे उपबंध सम्मिलित नहीं हैं।
- इनकी व्याख्या अस्पष्ट, अनिश्चित एवं धुंधली है। जैसे-लोक व्यवस्था, अल्पसंख्यक, उचित प्रतिबंध और सार्वजनिक हित आदि शब्दों की व्याख्या अस्पष्ट है।
- मूल अधिकारों में स्थायित्व का अभाव है। संसद इनमें कटौती या कमी कर सकती है।
- आलोचकों का मत है कि निवारक निरोध का उपबंध मूल अधिकारों की मुख्य भावना से इसे दूर करता है। यह राज्य को मनमानी शक्ति प्रदान करता है।
- मूल अधिकारों के क्रियान्वयन में आम नागरिक को महँगी न्यायिक प्रक्रिया का सामना करना पड़ता है।

वस्तुत: अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक सम्मेलन-2020 में अधिकारों और कर्त्तव्यों के विषय पर चर्चा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का भी मत था कि लोगों द्वारा कर्त्तव्यों का निर्वाह किये बिना सिर्फ अधिकारों की मांग करना संविधान की मूल भावना के खिलाफ है। मूल कर्त्तव्य नागरिकों को नैतिक उत्तरदायित्व का बोध भी कराते हैं। अधिकार एवं कर्तव्य एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। वर्ष 1976 में सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई।

42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम

- इसे लघु संविधान के रूप में जाना जाता है। इसके तहत मौलिक कर्तव्यों के अलावा कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण संशोधन किये गए थे जो निम्नलिखित हैं-
  - इस संशोधन के अंतर्गत भारतीय संविधान में 'समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं अखंडता' जैसे तीन नए शब्द जोड़े गए।
  - इसमें राष्ट्रपति को कैबिनेट की सलाह को मानने के लिये बाध्य का किया गया।
  - इसके तहत संवैधानिक संशोधन को न्यायिक प्रक्रिया से बाहर कर नीति निर्देशक तत्त्वों को व्यापक बनाया गया।
  - शिक्षा, वन, वन्यजीवों एवं पक्षियों का संरक्षण, नाप-तौल और न्याय प्रशासन तथा उच्चतम और उच्च न्यायालय के अलावा सभी न्यायालयों के गठन और संगठन के विषयों को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया गया।

मूल कर्त्तव्य से तात्पर्य

- मूल कर्त्तव्य राज्य और नागरिकों के मध्य एक सामाजिक अनुबंध है। जो किसी देश के संविधान द्वारा वैधता प्राप्त करता है।
- अधिकारों के सापेक्ष यह भी महत्त्वपूर्ण है कि सभी नागरिक समाज और राज्य के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन के संदर्भ में ईमानदार रहें।
- कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में भी राज्य के प्रति नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख मिलता है।

मूल कर्त्तव्यों की सूची

- संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
- स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोये रखें और उनका पालन करें।
- भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें तथा उसे अक्षुण्ण रखें।

नोट :

- देश की रक्षा करें और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
- भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी प्रकार के भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।
- हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
- प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव आते हैं, की रक्षा करें और संवर्द्धन करें तथा प्राणीमात्र के लिये दया भाव रखें।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
- सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र प्रगति की ओर निरंतर बढ़ते हुए उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
- 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बीच के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना। यह कर्त्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया।

मूल कर्त्तव्यों की विशेषताएँ

- मौलिक कर्त्तव्यों के तहत नैतिक और नागरिक दोनों ही प्रकार के कर्त्तव्य शामिल किये गए हैं। उदाहरण के लिये 'स्वतंत्रता के लिये हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरित करने वाले महान आदर्शों का पालन करना' एक नैतिक कर्त्तव्य है, जबकि 'संविधान का पालन करना और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज एवं राष्ट्रीय गान का आदर करना' एक नागरिक कर्त्तव्य है।
- ये मूल्य भारतीय परंपरा, पौराणिक कथाओं, धर्म एवं पद्धतियों से संबंधित हैं।
- गौरतलब है कि कुछ मौलिक अधिकार भारतीय नागरिकों के साथ-साथ विदेशी नागरिकों को प्राप्त हैं, परंतु मौलिक कर्त्तव्य केवल भारतीय नागरिकों पर ही लागू होते हैं।
- विधान के अनुसार मौलिक कर्तव्य गैर-न्यायोचित या गैर-प्रवर्तनीय होते हैं अर्थात् उनके उल्लंघन के मामले में सरकार द्वारा कोई कानूनी प्रतिबंध लागू नहीं किया जा सकता है।

मूल कर्त्तव्यों का महत्त्व

- ये असामाजिक गतिविधियों जैसे- झंडा जलाना, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करना या सार्वजनिक शांति को भंग करना आदि के विरुद्ध लोगों के लिये एक चेतावनी के रूप में कार्य करते हैं।
- मूल कर्त्तव्य नागरिकों के लिये प्रेरणास्रोत हैं, उनमें अनुशासन और प्रतिबद्धता को बढ़ाते हैं। वे इस सोच को उत्पन्न करते हैं कि नागरिक केवल मूक दर्शक नहीं हैं बल्कि राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति में सक्रिय भागीदार हैं।
- अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय ये नागरिकों को अपने देश के प्रति कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं। नागरिकों को अपने देश, समाज और साथी नागरिकों के प्रति अपने कर्त्तव्यों के संबंध में भी जानकारी रखनी चाहिये।

मूल कर्त्तव्यों की आलोचना

- मौलिक कर्त्तव्यों की सूची पूर्ण नहीं हैं क्योंकि इसमें कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों जैसे- मतदान, कर अदायगी और परिवार नियोजन आदि को शामिल नहीं किया गया है।
- मौलिक कर्त्तव्यों को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया गया है। एक आम नागरिक के लिये मौलिक कर्त्तव्यों में मौजूद जटिल शब्दों जैसे समग्र संस्कृति, उच्च आदर्श तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि को समझना कठिन है।
- इन कर्त्तव्यों को कानून द्वारा लागू नहीं किया जा सकता और इसलिये आलोचक मानते हैं कि संविधान में इनके होने का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।
- संविधान के भाग 4 में इन्हें शामिल करना, मूल कर्त्तव्यों के मूल्य व महत्व को कम करती है। मूल कर्त्तव्यों को भाग 3 के बाद जोड़ा जाना चाहिये था, ताकि वे मूल अधिकारों के समकक्ष रहते।

मूल अधिकार और कर्त्तव्य एक-दूसरे के पूरक

- जहाँ एक ओर नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क परिवहन जैसी सुविधाओं के उपयोग का अधिकार प्राप्त है, तो वहीं दूसरी ओर उनके बेहतर रखरखाव का कर्त्तव्य भी आरोपित है।
- यदि संविधान में शांतिपूर्वक विरोध प्रदर्शन करने का अधिकार प्राप्त है तो सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान न पहुँचाने का कर्त्तव्य भी उल्लिखित है।
- संविधान में गरिमामयी जीवन जीने का अधिकार प्राप्त है तो इसे मूर्त रूप देने के लिये पर्यावरण के संरक्षण का दायित्व भी है।
- जहाँ एक ओर 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करना मौलिक अधिकार है तो वहीं दूसरी ओर अभिभावकों का मौलिक कर्त्तव्य भी है कि वे अपने पाल्यों को प्राथमिक शिक्षा दिलवाएँ।
- यदि संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है तो भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करने का दायित्व भी है।
- जहाँ एक ओर धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है, तो वहीं दूसरी ओर सर्वधर्म समभाव और संस्कृति की गौरवशाली परंपरा के परिरक्षण का भी दायित्व है।
- जहाँ एक ओर हमें सूचना पाने का अधिकार प्राप्त है तो वहीं दूसरी ओर असामाजिक व देशविरोधी तत्त्वों के बारे में जाँच एजेंसियों को सूचना उपलब्ध कराने का कर्त्तव्य भी निहित है।

निष्कर्ष

अधिकारों से अभिप्राय है कि मनुष्य को कुछ स्वतंत्रताएँ प्राप्त होनी चाहिये, जबकि कर्त्तव्यों से तात्पर्य है कि व्यक्ति पर समाज के कुछ ऋण हैं। समाज का उद्देश्य किसी एक व्यक्ति का विकास न होकर सभी मनुष्यों के व्यक्तित्व का समुचित विकास है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार के साथ कुछ कर्त्तव्य जुड़े हुए हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिये। मौलिक अधिकार जहाँ हमें देश में कहीं भी स्वतंत्र रूप से रहने-बसने की स्वतंत्रता देते हैं तो वहीं मौलिक कर्त्तव्य हमें देश के प्रति हमारे दायित्व को निभाने का आदेश देते हैं।

कल्याणकारी योजनाओं में आधार की भूमिका

संदर्भ

लोकतांत्रिक व्यवस्था को किसी भी देश की संचालन व्यवस्थाओं में से श्रेयस्कर माना जाता है। इस श्रेयस्कर व्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं में से एक प्रमुख विशेषता कल्याणकारी राज्य की उपस्थिति है। कल्याणकारी राज्य, शासन की वह संकल्पना है जिसमें राज्य नागरिकों की सामाजिक-आर्थिक उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। कल्याणकारी राज्य अवसरों की समानता, संसाधनों का न्यायोचित वितरण तथा लोगों तक मूलभूत आवश्यकताओं की पहुँच सुनिश्चित करने के सिद्धांत पर कार्य करता है।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तथा शासन संचालन हेतु कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को अपनाया। इस संकल्पना के तहत कल्याणकारी योजनाओं को जनता तक सुगमतापूर्वक पहुँचाने के लिये आधार कार्ड के विचार को मूर्त रूप दिया गया। नीति नियंताओं का ऐसा मानना था कि आधार कार्ड की व्यवस्था नीतियों के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर कर, सुपात्रों का चयन कर योजनाओं का लाभ सही व्यक्तियों तक पहुँचाने में सफल रहेगी, परंतु हाल ही में कुछ शोधकर्त्ताओं द्वारा झारखंड में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में हुई अनियमितताओं को उजागर करने से आधार जैसी व्यवस्था की प्रमाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगता नज़र आ रहा है। इस आलेख में आधार की आवश्यकता, क्रियान्वयन में उत्पन्न चुनौतियाँ, इसके परिणाम तथा समाधान के उपाय तलाशने का प्रयास किया जाएगा।

शोधकर्त्ताओं का आकलन

- वित्तीय वर्ष 2017-18 में वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के दौरान भारतीय पहचान प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा यह बताया गया कि योजनाओं के क्रियान्वयन में आधार कार्ड की व्यवस्था के उपरांत सरकारी सब्सिडी में 90,000 करोड़ रुपए की बचत की गई।
- परंतु इस रिपोर्ट के 2 वर्ष बाद विभिन्न शोधकर्त्ताओं द्वारा प्रकाशित एक शोधपत्र में आधार के उपयोग के बावजूद झारखंड में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में हुई अनियमितताओं के संबंध में चौंकाने वाले आँकड़े प्रस्तुत किये गए हैं।

- शोधकर्त्ताओं के अनुसार, झारखंड में व्यापक स्तर पर किये गए सर्वे से पता चला कि अधिकांश लोगों के राशन कार्ड अभी आधार कार्ड के साथ लिंक नहीं किये गए हैं। इससे फर्ज़ी राशन कार्ड धारक इस योजना का लाभ उठा रहे हैं और लगभग 10% वैध राशनकार्ड धारक इस प्रणाली का लाभ नहीं ले पा रहे हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

- इस प्रणाली की शुरुआत वर्ष 1947 में हुई और यह देश में गरीबों के लिये सब्सिडाइज्ड दरों पर खाद्य तथा अखाद्य पदार्थों के वितरण का कार्य करता है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) कम कीमत पर अनाज के वितरण और आपातकालीन स्थितियों में प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिये लाई गई एक प्रणाली है।
- इसे भारत सरकार के उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के तहत स्थापित किया गया है और केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त रूप से प्रबंधित किया जाता है।
- 'फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया' पीडीएस के लिये खरीद और रखरखाव का कार्य करता है जबकि राज्य सरकारों को राशन एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण सुनिश्चित करना होता है।
- तकनीकी समस्याओं के कारण पात्र लोगों की भी पहचान सुनिश्चित नहीं हो पा रही है।
- शोध के अनुसार, आधार कार्ड की व्यवस्था के उपरांत लोगों पर वित्तीय भार बढ़ा है।
- वस्तु एवं सेवा कर लागू होने के बाद राज्यों के पास राजस्व संग्रहण का अभाव हो गया जिससे राज्य योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर नहीं कर पा रहे हैं।
- आधार कार्ड और राशन कार्ड के आँकड़ों में एकरूपता न होने के कारण लाभार्थियों को समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।
- शैक्षिक स्तर में कमी होने के कारण राशन वितरण केंद्रों में तैनात कर्मियों द्वारा लाभार्थियों को भ्रमित किया जाता है।

आधार क्या है?

- आधार भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण द्वारा निर्धारित सत्यापन प्रक्रिया को पूरा करने के उपरांत भारत के सभी निवासियों को जारी की जाने वाली 12 अंकों की एक विशेष पहचान संख्या है।
- किसी भी आयु का कोई भी व्यक्ति जो भारत का निवासी है, बिना किसी लिंग भेद के आधार संख्या प्राप्ति हेतु स्वेच्छा से नामांकन करवा सकता है।
- इसमें बायोमेट्रिक पहचान शामिल होती है, अर्थात इसमें व्यक्ति का नाम, पता, आयु, जन्मतिथि, उसके फिंगर-प्रिंट और आँखों की स्कैनिंग तक शामिल होती है।
- डुप्लीकेट और फर्जी पहचान समाप्त करने के लिये यह काफी मज़बूत और अद्वितीय व्यवस्था है।
- इसका विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं ओर सेवाओं के प्रभावी वितरण, पारदर्शिता और सुशासन को बढ़ावा देने हेतु एक बुनियादी पहचान के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

पृष्ठभूमि

- वर्ष 2000 में कारगिल समीक्षा समिति की रिपोर्ट के बाद गठित मंत्रियों के उच्च अधिकार प्राप्त समूह ने एक बहुउद्देशीय राष्ट्रीय पहचान पत्र की सिफारिश की।
- सरकार ने अपने राष्ट्रीय सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम में घोषणा की कि सरकारी सब्सिडी के तीव्र लक्ष्यीकरण के लिये एक विस्तृत रोडमैप का अनावरण किया जाएगा।
- मार्च 2006 में सरकार ने गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों के लिये एक विशिष्ट पहचान पत्र से संबंधित योजना का अनावरण किया।
- 22 जनवरी 2009 को भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण को अधिसूचित किया गया। जून 2009 में इन्फोसिस के सह-संस्थापक नंदन नीलेकणि को इसका पहला अध्यक्ष नियुक्त किया गया।
- 29 सितंबर, 2010 को प्रथम 12 अंकों वाली आधार संख्या जारी की गई।

नोट :

विश्व के कुछ अन्य देशों में पहचान संबंधी व्यवस्था

- थाईलैंड में नेशनल आईडी नंबर की सहायता से वहाँ की सरकार ने देशव्यापी स्वास्थ्य कवरेज़ उपलब्ध कराकर इन सेवाओं के वितरण में उल्लेखनीय सुधार किया है।
- पेरू में यूनिवर्सल पॉपुलेशन और रजिस्ट्रेशन योजना के माध्यम से प्राकृतिक आपदाओं में ज़रूरतमंदों तक राहत और सहायता पहुँचाने के काम में तेज़ी आई है।
- हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में बायोमेट्रिक व्यवस्था के बाद महिलाओं तक प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के काम में मदद मिली है और इससे वे अपनी इच्छानुसार खर्च करने की स्थिति में आई हैं।
- भारत के एक अन्य पड़ोसी देश चीन में आधार की तरह की नेशनल आईडी जारी करने का काम वहाँ का सार्वजनिक सुरक्षा मंत्रालय करता है।
- नेपाल और श्रीलंका में भी राष्ट्रीय पहचान-पत्र जारी किये जाते हैं। बांग्लादेश में वहाँ का चुनाव आयोग इस प्रकार के पहचान-पत्र जारी करता है।
- म्याँमार का श्रम मंत्रालय नेशनल रजिस्ट्रेशन कार्ड जारी करता है और भूटान में वहाँ का गृह मंत्रालय सिटीज़नशिप आईडी कार्ड जारी करता है।

आधार की आवश्यकता

- भारत सरकार बड़ी संख्या में समाजिक कल्याणकारी योजनाओं का वित्त पोषण करती है जो कि समाज के गरीब और सबसे कमज़ोर वर्गों की ओर केंद्रित होती है।
- आधार की व्यवस्था सरकार को उसके कल्याण तंत्र को कारगर बनाने तथा पारदर्शिता और सुशासन सुनिश्चित करने के लिये एक अनूठा अवसर प्रदान करते हैं।

कल्याणकारी योजनाओं में आधार से लाभ

- लक्षित वितरण द्वारा लीकेज को रोकना: ऐसे कल्याण कार्यक्रमों जिनमें सेवा वितरण से पूर्व लाभार्थियों की पुष्टि करना आवश्यक है, को भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण की प्रमाणीकरण सेवा का लाभ मिलेगा। इसके परिणामस्वरूप लीकेज को रोकना और सेवाओं का वितरण लक्षित लाभार्थियों तक ही किया जाना सुनिश्चित होगा। उदाहरणस्वरूप सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाभार्थियों की सब्सिडाइज्ड योजना, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) के लाभार्थियों की कार्यस्थल पर उपस्थिति आदि इसमें शामिल हैं।
- दक्षता और प्रभावकारिता में सुधार: आधार द्वारा सेवा वितरण प्रणाली के बारे में पारदर्शी और सटीक जानकारी उपलब्ध कराने के परिणामस्वरूप सरकार संवितरण प्रणाली में सुधार कर सकती हैं और दुर्लभ विकास कोष को अधिक प्रभावी ढंग से व्यवस्थित कर सकती है, साथ ही कुशलतापूर्वक सेवा वितरण नेटवर्क में शामिल मानव संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकती है।
- पोर्टेबिलिटी: आधार एक सार्वभौमिक संख्या है, संस्था एवं सेवाएँ लाभार्थी की पहचान के लिये देश में कहीं से भी सेंट्रल यूनिक आइडेंटिफिकेशन डेटा बेस से संपर्क कर सकती हैं।
- प्रत्यक्ष लाभ अंतरण: लाभार्थियों के आधार से लिंक बैंक अकाउंट में प्रत्यक्ष रूप से सब्सिडी पहुँचायी जा रही है जिससे योजनाओं का लाभ पात्र लोगों को प्राप्त हो रहा है।

चुनौतियाँ

- व्यापक पैमाने पर आधार के आँकड़ों तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं के लाभार्थियों की पात्रता संबंधी आँकड़ों में अंतर है।
- तकनीकी समस्याओं के कारण आधार कल्याणकारी योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में प्रभावकारी नहीं हो पाया।
- लोगों में तकनीकी के प्रयोग के प्रति जागरूकता की कमी है, जिससे वे कल्याणकारी योजनाओं का लाभ नहीं ले पा रहे हैं।
- व्यक्तिगत जानकारी चोरी हो जाने के डर से लोग आधार कार्ड बनवाने के लिये पंजीकरण नहीं करा रहे हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कल्याणकारी योजनाओं में आधार कार्ड की अनिवार्यता संबंधी सरकार के निर्देश को खारिज़ करने के बाद लोगों ने जानबूझकर आधार का उपयोग करना बंद कर दिया।

नोट :

संभावित समाधान

- सर्वप्रथम आधार को लेकर लोगों में फैली भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिये।
- निर्मित हो चुके आधार कार्ड के त्रुटिपूर्ण आँकड़ों में सावधानीपूर्वक संशोधन करना चाहिये।
- कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में आधार को अनिवार्य करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति का त्रुटिरहित आधार कार्ड बनाना चाहिये।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को तकनीकी रूप से दक्ष बनाना होगा।
- डिजिटल भारत अभियान को प्रोत्साहन देकर लोगों को तकनीकी रूप से सहज बनाने की दिशा में कार्य करना होगा।

आगे की राह

भारत में आधार को लॉन्च हुए एक दशक से भी अधिक समय हो चुका है। आधार ने भारत में सरकार एवं लोगों के बीच विभिन्न सेवाओं के अंतरण जैसी उपयोगी भूमिका निभाई है। इससे सरकारी बजट में कुशलता आई है, साथ ही लक्षित व्यक्ति तक सेवाओं की पहुँच को सुनिश्चित किया जा सका है। ध्यातव्य है कि आधार में किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित अति निजी एवं गोपनीय सूचनाएँ होती हैं यदि इनका प्रकटीकरण किया जाता है अथवा दुरुपयोग किया जाता है तो इसके कई गंभीर परिणाम हो सकते हैं। उपर्युक्त विचार के संदर्भ में भारत में आधार को लेकर वाद-विवाद होता रहा है तथा आधार को अधिक सुरक्षित बनाने के लिये भी समय-समय पर प्रयास किये जाते रहे हैं। आधार द्वारा कल्याणकारी योजनाओं की प्रभावकारिता में वृद्धि की जा सकती है, बशर्ते इसके मार्ग में आने वाली चुनौतियों को सही तरीके से संबोधित कर दिया जाए।

फार्मास्युटिकल दवाएँ और संबंधित मुद्दे

संदर्भ

भारत फार्मा क्षेत्र में सुरक्षित, दक्ष और गुणवत्तायुक्त दवाओं के बल पर अपनी स्थिति मजबूत करने की राह पर आगे बढ़ रहा है। भारत के 32 अरब डॉलर के जेनेरिक आधारित फार्मा उद्योग के सामने तमाम अवसर हैं। जहाँ एक ओर वैश्विक स्तर पर अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान जैसे विकसित देशों में भारत में निर्मित सुरक्षित और गुणवत्तायुक्त दवाओं की मांग बढ़ रही है, तो वहीं दूसरी ओर भारत में स्थानीय स्तर पर ही इन दवाओं की गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लग रहा है।

हाल ही में हिमाचल प्रदेश स्थित एक भारतीय फार्मास्युटिकल कंपनी द्वारा निर्मित खाँसी से संबंधित सीरप कोल्डबेस्ट- पीसी (Coldbest-PC) का सेवन करने से जम्मू के उधमपुर ज़िले में 12 बच्चों की असामयिक मृत्यु हो गई। इस घटना से फार्मास्युटिकल दवाओं के उपयोग को लेकर लोगों के मन में संदेह उत्पन्न हो गया है। इस आलेख के माध्यम से भारतीय फार्मास्युटिकल कंपनियों द्वारा निर्मित दवाओं की गुणवत्ता, विनियमन, चुनौतियों तथा इसके समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया जाएगा।

मुद्दा क्या है ?

- स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, चंडीगढ़ के डॉक्टरों की एक टीम ने अपने शोध में यह पाया कि उधमपुर ज़िले में बच्चों की मृत्यु का प्रमुख कारण खाँसी से संबंधित सीरप कोल्डबेस्ट- पीसी का सेवन करना है, जिसमें डाइएथिलीन ग्लाइकॉल (Diethylene Glycol) की मात्रा निर्धारित मानक से अधिक पाई गई।
- डाइएथिलीन ग्लाइकॉल एक एंटी-फ्रीज़िंग एजेंट है, जो मानव शरीर में पक्षाघात, सांस लेने में कठिनाई, किडनी की विफलता और अंततः मृत्यु का कारण बनता है।
- डाईएथिलीन ग्लाइकॉल के कारण बच्चों की मृत्यु का यह कोई पहला मामला नहीं है बल्कि इससे पहले वर्ष 1973 में चेन्नई के चिल्ड्रेन हॉस्पिटल में 14 बच्चों, वर्ष 1986 में मुंबई के जे.जे. हॉस्पिटल में 14 मरीजों तथा वर्ष 1998 में नई दिल्ली में 33 बच्चों की मृत्यु हुई थी।
- पूर्व में घटित इन तीन घटनाओं के बावजूद भी फार्मास्युटिकल कंपनियों ने डाइएथिलीन ग्लाइकॉल के संदर्भ में शोध करने की आवश्यकता नहीं समझी जो पूरी तरह से चिकित्सीय लापरवाही को दर्शाता है।

भारतीय फार्मा क्षेत्र

- भारत वैश्विक स्तर पर जेनेरिक दवाओं का सबसे बड़ा प्रदाता है। विभिन्न वैक्सीन की वैश्विक मांग में भारतीय दवा क्षेत्र की आपूर्ति 50% से अधिक है।

- वर्ष 2017 में फार्मास्युटिकल क्षेत्र का मूल्य 33 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।
- वित्त वर्ष 2018 में भारत का दवा निर्यात 17.27 बिलियन अमेरिकी डॉलर था जो वित्त वर्ष 2019 में बढ़कर 19.14 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया है।
- जैव-फार्मास्युटिकल्स, जैव-सेवा, जैव-कृषि, जैव-उद्योग और जैव सूचना विज्ञान से युक्त भारत का जैव-प्रौद्योगिकी उद्योग प्रति वर्ष लगभग 30% की औसत वृद्धि दर के साथ वर्ष 2025 तक 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है।

समस्याएँ और चुनौतियाँ

- शोध की कमी
  - भारतीय फार्मा उद्योग में अनुसंधान घटकों और वास्तविक समय में अच्छी विनिर्माण प्रथाओं का अभाव है।
  - भारतीय फार्मा कंपनियों द्वारा अनुसंधान और विकास में निवेश वित्त वर्ष 2018 में 8.5 प्रतिशत हो गया है जो वित्त वर्ष 2012 में 5.3 प्रतिशत के सापेक्ष अधिक है, लेकिन यह अमेरिकी फार्मा कंपनियों की तुलना में अभी भी कम है क्योंकि अमेरिकी फार्मा कंपनियाँ अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में 15–20% तक निवेश करते हैं।
  - चीन अनुसंधान और विकास में निवेश, वैज्ञानिक प्रकाशनों और पेटेंट के मामले में तीव्र गति से वृद्धि कर रहा है। चीन को निम्न-स्तर की जेनेरिक दवाओं के बड़े पैमाने पर उत्पादन और सक्रिय फार्मास्युटिकल संघटक (Active Pharmaceutical Ingredients-APIs) के 'वैश्विक कारखाने' के रूप में जाना जाता है। भारत बड़े स्तर पर चीन से सक्रिय फार्मास्युटिकल संघटक को आयात करता है।
- नीति समर्थन का अभाव
  - भारत में सस्ती दरों पर जेनेरिक दवाओं के निर्माण तथा कच्चे माल की उपलब्धता में सुधार करने हेतु देश के सभी राज्यों में छोटे पैमाने पर कच्चे माल की विनिर्माण इकाइयों / इनक्यूबेटरों की स्थापना के लिये अनुकूल सरकारी नीति का अभाव है।
  - सरकार के पास उद्योग तथा फार्मासिस्ट समुदाय को उद्यमी बनाने और इनक्यूबेटर्स की स्थापना को बढ़ावा देने के लिये अवसंरचना का अभाव है।
  - स्वदेशी रूप से उत्पादित कच्चे माल की अच्छी गुणवत्ता का अभाव
  - छोटी इकाइयों से उत्पादित कच्चे माल की गुणवत्ता विनिर्देशों का पता लगाने के लिये इसे राज्य की परीक्षण प्रयोगशाला में ठीक से सत्यापित किया जाना चाहिये।
  - कच्चे माल के गुणवत्ता विनिर्देशन के कार्य को गति देने के लिये हर राज्य में एक कार्यात्मक परीक्षण प्रयोगशाला की आवश्यकता है।
- कुशल श्रम का अभाव
  - फार्मास्युटिकल कंपनियों में कुशल श्रमशक्ति की कमी है।
- चीन पर निर्भरता
  - जेनेरिक दवाओं के उत्पादन के लिये कच्चे माल की आपूर्ति हेतु भारतीय फार्मा उद्योग चीन पर निर्भर है।
  - चीनी सक्रिय फार्मास्युटिकल संघटक के आयात पर भारत की निर्भरता कीमतों के प्रति संवेदनशील है।
- नैदानिक परीक्षणों में अनैतिकता
  - भ्रष्टाचार, परीक्षण की अल्प लागत, बेतरतीब अनुपालन और दवा कंपनियों व चिकित्सकों की मिलीभगत ने भारत में अनैतिक दवा परीक्षणों को अवसर दिया है। स्वास्थ्य व परिवार कल्याण पर संसदीय समिति ने केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन (Central Drugs Standard Control Organization-CDSCO) को सौंपी रिपोर्ट में कहा कि ऐसे पर्याप्त साक्ष्य हैं कि दवा निर्माताओं, CDSCO के कुछ कर्मियों और कुछ चिकित्सा विशेषज्ञों के बीच अनैतिक मिलीभगत है।
  - समिति ने इस ओर भी ध्यान दिलाया कि CDSCO ने बेतरतीब ढंग से चयनित 42 दवा नमूनों में से 33 को भारतीय मरीज़ों पर किसी नैदानिक परीक्षण के बिना ही इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी।

नोट :

केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन

- केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन (CDSCO) स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय के अंतर्गत स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का राष्ट्रीय नियामक प्राधिकरण है।
- इसका मुख्यालय नई दिल्ली में है।
- देश भर में इसके छह ज़ोनल कार्यालय, चार सब-ज़ोनल कार्यालय, तेरह पोर्ट कार्यालय और सात प्रयोगशालाएँ हैं।
- विज़न: भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा करना और उसे बढ़ावा देना।
- मिशन: दवाओं, सौंदर्य प्रसाधन और चिकित्सा उपकरणों की सुरक्षा, प्रभावकारिता और गुणवत्ता बढ़ाकर सार्वजनिक स्वास्थ्य की सुरक्षा तय करना।
- औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 और नियम 1945 (The Drugs & Cosmetics Act,1940 and rules 1945) के अंतर्गत CDSCO दवाओं के अनुमोदन, नैदानिक परीक्षणों के संचालन, दवाओं के मानक तैयार करने, देश में आयातित दवाओं की गुणवत्ता पर नियंत्रण और राज्य दवा नियंत्रण संगठनों को विशेषज्ञ सलाह प्रदान करके औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम के प्रवर्तन में एकरूपता लाने के लिये उत्तरदायी है।
- सरकारी मूल्य नीतियों के कारण कम मुनाफा
  - भारतीय फार्मा कंपनियों को उचित लाभ नहीं मिल रहा है, उनका मुनाफा मूल रूप से अमेरिका जैसे अन्य देशों में उनके समकक्षों की तुलना में बहुत कम है।
  - उनकी आय पर्याप्त नहीं है कि वे अनुसंधान एवं विकास पर पैसा लगा सकें।
  - कंपनियों का मानना है कि सरकार द्वारा किये जा रहे सुधारों की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिये आवश्यक दवाओं की कीमतों को कम कर दिया गया है। ऐसा सरकार द्वारा जनता को कम मूल्य पर दवाएँ उपलब्ध कराने के लिये किया गया है। इसलिये सरकार द्वारा फार्मा कंपनियों को प्रोत्साहन देने के लिये अन्य विकल्पों पर विचार करना चाहिये।

विनियमन की आवश्यकता क्यों?

- इस क्षेत्र में विनियमन इसलिये बेहद आवश्यक है कि वैश्विक स्तर पर निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं। विशेषकर बेहतर विनिर्माण के तरीकों (Good Manufacturing Practices-GMP), बेहतर नैदानिक विधियों (Good Clinical Practices-GCP) और प्रयोगशाला के बेहतर उपयोग (Good Laboratory Practices-GLP) के संदर्भ में। इसके अलावा देश में सस्ते मूल्य पर गुणवत्तायुक्त दवाओं की सुचारु आपूर्ति सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व भी नियामक निकायों के ऊपर ही है।
- वर्ष 1937 में जब संयुक्त राज्य अमेरिका को डाईएथिलीन ग्लाइकॉल की विषाक्तता का सामना करना पड़ा तब सभी दवा निरीक्षकों को डाईएथिलीन ग्लाइकॉल के स्रोत को जब्त करने का आदेश दिया गया। भारत में शासन तथा प्रशासन के स्तर पर इस प्रकार की कार्ययोजना का अभाव दिखता है।
- भारत ने बाज़ार से खतरनाक दवाओं को वापस लेने पर कोई बाध्यकारी दिशा-निर्देश या नियम अधिसूचित नहीं किये हैं।
- स्वास्थ्य पर संसदीय स्थायी समिति की 59वीं रिपोर्ट के साथ-साथ विश्व स्वास्थ्य संगठन (अपने राष्ट्रीय नियामक मूल्यांकन में) ने भी भारत में एक राष्ट्रीय रीकॉल फ्रेमवर्क की कमी पर भारत के औषधि नियंत्रक को चेतावनी दी थी। वर्ष 2012 में दिशा-निर्देशों का एक नया प्रारूप तैयार किया गया था, लेकिन इसे कभी भी कानून में अधिसूचित नहीं किया गया।
- केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन तथा राष्ट्रीय औषधि मूल्य निर्धारण प्राधिकरण जैसी नियामक संस्थाओं का प्रभावी रूप से कार्य न करना।

राष्ट्रीय औषधि मूल्य निर्धारण प्राधिकरण
(National Pharmaceutical Pricing Authority-NPPA)

- यह एक स्वायत्त निकाय है तथा देश के लिये स्वास्थ्य संबंधी आवश्यक दवाओं (National List of Essential Medicines-NLEM) एवं उत्पादों की कीमतों को नियंत्रित करता है।

NPPA के कार्य

- विनियंत्रित थोक औषधियों व फॉर्मूलों का मूल्य निर्धारित व संशोधित करना।
- निर्धारित दिशा-निर्देशों के अनुरूप औषधियों के समावेशन व बहिर्वेशन के माध्यम से समय-समय पर मूल्य नियंत्रण सूची को अद्यतन करना।
- दवा कंपनियों के उत्पादन, आयात-निर्यात और बाज़ार हिस्सेदारी से जुड़े डेटा का रखरखाव।
- दवाओं के मूल्य निर्धारण से संबंधित मुद्दों पर संसद को सूचनाएँ प्रेषित करने के साथ-साथ दवाओं की उपलब्धता का अनुपालन व निगरानी करना।

सुझाव

- अनुसंधान योजनाएँ
  - उद्योगों द्वारा पहचान किये गए शोधकर्त्ता / संकाय के साथ सीधे संपर्क के माध्यम से शोध कार्य प्रारंभ किया जाना चाहिये।
  - उद्योगों के बेहतर संचालन के लिये शोध कार्य करने वाले छात्रों को प्रोत्साहन राशि का भुगतान किया जाना चाहिये।
- अंतर्राष्ट्रीय सहयोग
  - उद्योग क्षेत्र और सरकार को नए फार्मूलों, दवाओं और उपचारों का आविष्कार, अनुसंधान और विकास करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संगठनों के साथ सहयोग करना चाहिये।
- आंतरिक औद्योगिक प्रशिक्षण
  - फार्मा उद्योग को प्रशिक्षुओं को उस क्षेत्र की आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षित करना चाहिये।
  - उपयोगकर्त्ता के अनुकूल नीतियों को अपनाने से लघु उद्योग स्थापित करने में मदद मिलेगी और इस क्षेत्र में छात्रों और मध्यम वर्ग के व्यापार मालिकों को प्रोत्साहित किया जाएगा। इससे फार्मासिस्टों के लिये बेरोजगारी की समस्या को दूर करने और राष्ट्र में उद्यमिता को बढ़ावा देने में भी मदद मिलेगी।
- विशेष फार्मा अनुसंधान केंद्रों की स्थापना
  - बदलते समय के साथ, छात्रों को अपने आसपास के अनुसंधान/प्रौद्योगिकी के बारे में इंटरनेट के माध्यम से जानकारी मिल रही है।
  - भारतीय शैक्षणिक संस्थान छात्रों के रचनात्मक विचारों से भरे हैं। भारतीय फार्मा उद्योग भविष्य में प्रगति के लिये इन रचनात्मक विचारों को अपना सकता है।
  - फार्मेसी छात्रों को डेटा व्याख्या और डेटा माइनिंग का अच्छा ज्ञान होने के साथ उपकरणों के संचालन में अत्यधिक जानकारी है। अत: इनका सहयोग उद्योगों में अनुसंधान के लिये किया अ सकता है।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम

- केंद्रीय मंत्रिमंडल ने कुछ शर्तों के अधीन चिकित्सा उपकरणों के विनिर्माण हेतु 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देने के लिये फार्मास्युटिकल क्षेत्र में मौजूदा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की नीति में संशोधन संबंधी अपनी मंज़ूरी दे दी है।
- औद्योगिक नीति और संवर्द्धन विभाग द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, ड्रग्स और फार्मास्युटिकल्स क्षेत्र ने अप्रैल 2000 से मार्च 2019 के बीच 15.98 बिलियन अमेरिकी डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित किया है।
- मार्च 2018 में ड्रग कंट्रोलर जनरल ऑफ इंडिया (DCGI) ने सहमति, अनुमोदन और अन्य जानकारी प्रदान करने के लिये एकल-खिड़की सुविधा शुरू करने की अपनी योजना की घोषणा की। इस कदम का उद्देश्य मेक इन इंडिया पहल को प्रोत्साहन देना है।
- भारत सरकार ने दवाओं के निर्माण में भारत को वैश्विक नेता बनाने के उद्देश्य से 'फार्मा विजन 2020' का अनावरण किया। निवेश को बढ़ावा देने के लिये नई सुविधाओं के लिये अनुमोदन का समय कम कर दिया गया है।

आगे की राह

- दवा नियामक प्रणाली को युक्तिसंगत बनाने, औषध क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देने तथा संबंधित क्षेत्र के साथ सहक्रियता निर्माण व समान दृष्टिकोण विकसित करने जैसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 के प्रावधानों को लागू किया जाना चाहिये।
- मानकों का उल्लंघन करने वाली फार्मास्युटिकल कंपनियों पर अर्थदंड लगाने के साथ ही इनका लाइसेंस रद्द कर देना चाहिये।
- विनियमन कानूनों को सुदृढ़ कर विनियामक निकायों को प्रभावी बनाना होगा।

नोट :

आर्थिक घटनाक्रम

मनरेगा कार्यक्रम- ग्रामीण प्रगति का वाहक

संदर्भ

एक कल्याणकारी राज्य की सफलता का आकलन इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वहाँ सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति के विकास को सुनिश्चित करने के लिये क्या प्रयास किये गए हैं। समग्र विकास की इस पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कृषि संकट और आर्थिक मंदी के दौर में मनरेगा ने ग्रामीण किसानों और भूमिहीन मज़दूरों के लिये एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य किया है। मौजूदा आर्थिक मंदी ने खासतौर पर देश के ग्रामीण क्षेत्रों को प्रभावित किया है और रोज़गार के अवसरों को काफी कम कर दिया है और मनरेगा के तहत मिलने वाले काम की मांग अचानक बढ़ गई है, जिसके कारण राज्यों के समक्ष बजट की चुनौती उत्पन्न हो गई है। वर्ष 2019-20 के लिये प्रस्तावित बजट में मनरेगा के लिये 60,000 करोड़ रुपए की धनराशि आवंटित की गई थी। कार्यक्रम के वित्तीय विवरण के अनुसार इस राशि का 96 प्रतिशत से अधिक हिस्सा खर्च किया जा चुका है, नया बजट आवंटित होने में अभी दो महीने का समय और लगेगा।

मनरेगा कार्यक्रम

- महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम अर्थात् मनरेगा को भारत सरकार द्वारा वर्ष 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम, 2005 (NREGA-नरेगा) के रूप में प्रस्तुत किया गया था। वर्ष 2010 में नरेगा (NREGA) का नाम बदलकर मनरेगा (MGNREGA) कर दिया गया।
- ग्रामीण भारत को 'श्रम की गरिमा' से परिचित कराने वाला मनरेगा रोज़गार की कानूनी स्तर पर गारंटी देने वाला विश्व का सबसे बड़ा सामाजिक कल्याणकारी कार्यक्रम है।
- मनरेगा कार्यक्रम के तहत प्रत्येक परिवार के अकुशल श्रम करने के इच्छुक वयस्क सदस्यों के लिये 100 दिन का गारंटीयुक्त रोज़गार, दैनिक बेरोज़गारी भत्ता और परिवहन भत्ता (5 किमी. से अधिक दूरी की दशा में) का प्रावधान किया गया है।
    - ध्यातव्य है कि सूखाग्रस्त क्षेत्रों और जनजातीय इलाकों में मनरेगा के तहत 150 दिनों के रोज़गार का प्रावधान है।
- मनरेगा एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम है। वर्तमान में इस कार्यक्रम में पूर्णरूप से शहरों की श्रेणी में आने वाले कुछ ज़िलों को छोड़कर देश के सभी ज़िले शामिल हैं। मनरेगा के तहत मिलने वाले वेतन के निर्धारण का अधिकार केंद्र एवं राज्य सरकारों के पास है। जनवरी 2009 से केंद्र सरकार सभी राज्यों के लिये अधिसूचित की गई मनरेगा मज़दूरी दरों को प्रतिवर्ष संशोधित करती है।

मनरेगा की प्रमुख विशेषताएँ

- पूर्व की रोज़गार गारंटी योजनाओं के विपरीत मनरेगा के तहत ग्रामीण परिवारों के व्यस्क युवाओं को रोज़गार का कानूनी अधिकार प्रदान किया गया है।
- प्रावधान के मुताबिक, मनरेगा लाभार्थियों में एक-तिहाई महिलाओं का होना अनिवार्य है। साथ ही विकलांग एवं अकेली महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने का प्रावधान किया गया है।
- मनरेगा के तहत मज़दूरी का भुगतान न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 के तहत राज्य में खेतिहर मज़दूरों के लिये निर्दिष्ट मज़दूरी के अनुसार ही किया जाता है, जब तक कि केंद्र सरकार मज़दूरी दर को अधिसूचित नहीं करती और यह 60 रुपए प्रतिदिन से कम नहीं हो सकती।
- प्रावधान के अनुसार, आवेदन जमा करने के 15 दिनों के भीतर या जिस दिन से काम की मांग की जाती है, आवेदक को रोज़गार प्रदान किया जाएगा।
- पंचायती राज संस्थानों को मनरेगा के तहत किये जा रहे कार्यों के नियोजन, कार्यान्वयन और निगरानी हेतु उत्तरदायी बनाया गया है।
- मनरेगा में सभी कर्मचारियों के लिये बुनियादी सुविधाओं जैसे- पीने का पानी और प्राथमिक चिकित्सा आदि के प्रावधान भी किये गए हैं।

नोट :

- मनरेगा के तहत आर्थिक बोझ केंद्र और राज्य सरकार द्वारा साझा किया जाता है। इस कार्यक्रम के तहत कुल तीन क्षेत्रों पर धन व्यय किया जाता है (1) अकुशल, अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रमिकों की मज़दूरी (2) आवश्यक सामग्री (3) प्रशासनिक लागत। केंद्र सरकार अकुशल श्रम की लागत का 100 प्रतिशत, अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रम की लागत का 75 प्रतिशत, सामग्री की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का 6 प्रतिशत वहन करती है, वहीं शेष लागत का वहन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।

मनरेगा की उपलब्धियाँ

- मनरेगा दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक कल्याण कार्यक्रम है जिसने ग्रामीण श्रम में एक सकारात्मक बदलाव को प्रेरित किया है। आँकड़ों के अनुसार, कार्यक्रम के शुरुआती 10 वर्षों में कुल 3.14 लाख करोड़ रुपए खर्च किये गए।
- इस कार्यक्रम ने ग्रामीण गरीबी को कम करने के अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए यकीनन ग्रामीण क्षेत्र के लाखों लोगों को गरीबी से बाहर निकालने में कामयाबी हासिल की है।
- आजीविका और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से मनरेगा ग्रामीण गरीब महिलाओं के सशक्तीकरण हेतु एक सशक्त साधन के रूप में सामने आया है। आँकड़ों के अनुसार, वित्तीय वर्ष 2015-16 में मनरेगा के माध्यम से उत्पन्न कुल रोज़गार में से 56 प्रतिशत महिलाओं के लिये था।
- आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2013-14 में मनरेगा के तहत कार्यरत व्यक्तियों की संख्या 7.95 करोड़ थी जो कि वर्ष 2014-15 में घटकर 6.71 करोड़ रह गई किंतु उसके बाद यह बढ़कर क्रमशः वर्ष 2015-16 में 7.21 करोड़, वर्ष 2016-17 में 7.65 करोड़ तथा वर्ष 2018-19 में 7.76 करोड़ हो गई।
- मनरेगा में कार्यरत व्यक्तियों के आयु-वार आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वित्त वर्ष 2017-18 के बाद 18-30 वर्ष के आयु वर्ग के श्रमिकों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है।
- मनरेगा ने आजीविका के अवसरों के सृजन के माध्यम से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उत्थान में भी मदद की है। मनरेगा को 2015 में विश्व बैंक ने दुनिया के सबसे बड़े लोकनिर्माण कार्यक्रम के रूप में मान्यता दी थी।
- नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (NCAER) की रिपोर्ट के मुताबिक, गरीब व सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों, जैसे-मज़दूर, आदिवासी, दलित एवं छोटे सीमांत कृषकों के बीच गरीबी कम करने में मनरेगा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

मनरेगा से संबंधित चुनौतियाँ

- अपर्याप्त बजट आवंटन

पिछले कुछ वर्षों में मनरेगा के तहत आवंटित बजट काफी कम रहा है, जिसका प्रभाव मनरेगा में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन पर देखने को मिलता है। वेतन में कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रामीणों की शक्ति पर पड़ता है और वे अपनी मांग में कमी कर देते हैं।

- मज़दूरी के भुगतान में देरी

एक अध्ययन में पता चला कि मनरेगा के तहत किये जाने वाले 78 प्रतिशत भुगतान समय पर नहीं किये जाते और 45 प्रतिशत भुगतानों में विलंबित भुगतानों के लिये दिशा-निर्देशों के अनुसार मुआवज़ा शामिल नहीं था, जो अर्जित मज़दूरी का 0.05 प्रतिशत प्रतिदिन है। आँकड़ों के अनुसार, वित्त वर्ष 2017-18 में अदत्त मज़दूरी 11,000 करोड़ रुपए थी।

- खराब मज़दूरी दर

न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 के आधार पर मनरेगा की मज़दूरी दर निर्धारित न करने के कारण मज़दूरी दर काफी स्थिर हो गई है। वर्तमान में अधिकांश राज्यों में मनरेगा के तहत मिलने वाली मज़दूरी न्यूनतम मज़दूरी से काफी कम है। यह स्थिति कमज़ोर वर्गों को वैकल्पिक रोज़गार तलाशने को विवश करता है।

- भ्रष्टाचार

वर्ष 2012 में कर्नाटक में मनरेगा को लेकर एक घोटाला सामने आया था जिसमें तकरीबन 10 लाख फर्ज़ी मनरेगा कार्ड बनाए गए थे, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को तकरीबन 600 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ था। भ्रष्टाचार मनरेगा से संबंधित एक बड़ी चुनौती है जिससे निपटना आवश्यक है। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि इसके तहत आवंटित धन का अधिकतर हिस्सा मध्यस्थों के पास चला जाता है।

आगे की राह

- जॉब कार्ड में रोज़गार संबंधी सूचना दर्ज नहीं करने जैसे अपराधों को अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध घोषित किया जाना चाहिये।

नोट :

- ध्यातव्य है कि पुरुष श्रमिकों की तुलना में महिला श्रमिकों की आय घर के जीवन स्तर को सुधारने में अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिये मनरेगा में महिलाओं की भागीदारी को और अधिक बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।
- केंद्र सरकार को आवंटित धन के अल्प-उपयोग के कारणों का विश्लेषण करना चाहिये और इसमें सुधार के लिये आवश्यक कदम उठाने चाहिये।

भारतीय कृषि क्षेत्र: समस्या और उपाय

संदर्भ

प्रगति के सुनहरे अतीत पर खड़ा भारतीय कृषि क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था में सदैव ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। भारत में विश्व का 10वाँ सबसे बड़ा कृषि योग्य भू-संसाधन मौजूद है। वर्ष 2011 की कृषि जनगणना के अनुसार, देश की कुल जनसंख्या का 61.5 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण भारत में निवास करता है और कृषि पर निर्भर है। उक्त तथ्य भारत में कृषि के महत्त्व को भलीभांति स्पष्ट करते हैं। वर्ष 2019 में देश के कृषि क्षेत्र में कई प्रकार के हस्तक्षेप और व्यवधान देखे गए। वर्ष 2019 के पहले हिस्से में 75000 करोड़ रुपए के रिकॉर्ड निवेश के साथ प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN) योजना की शुरुआत की गई। हालाँकि वर्ष 2019 का दूसरा हिस्सा इस क्षेत्र के लिये आपदा के रूप में सामने आया और देश के कई हिस्सों में सूखे और बाढ़ की घटनाएँ देखी गईं। इसके अलावा आर्थिक मंदी और सब्जियों खासकर प्याज तथा दालों की कीमतों में वृद्धि ने उपभोक्ताओं (जिसमें किसान भी शामिल हैं) पर बोझ को और अधिक बढ़ा दिया। यह स्थिति मुख्यत: दो तथ्यों को स्पष्ट करती है:

- लोकलुभावन उपायों और प्रयासों का अर्थव्यवस्था पर कुछ खास प्रभाव नहीं पड़ रहा है और
- जलवायु-प्रेरित आपदाओं की भेद्यता (Vulnerability) को कम करने के कई उपायों के बावजूद कृषि क्षेत्र और किसानों को नुकसान हो रहा है।

इस प्रकार कृषि क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक है कि नीति निर्माण के समय अतीत के अनुभवों को ध्यान में रखा जाए और मौजूदा अवसरों का यथासंभव लाभ उठाया जाए।

भारत में कृषि की मौजूदा स्थिति

- हाल ही में जारी आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार भारतीय आबादी का एक बड़ा हिस्सा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अन्य क्षेत्रों की तुलना में रोज़गार अवसरों के लिये कृषि क्षेत्र पर अधिक निर्भर है।
- आँकड़ों के मुताबिक देश में चालू कीमतों पर सकल मूल्यवर्द्धन (GVA) में कृषि एवं सहायक क्षेत्रों का हिस्सा वर्ष 2014-15 के 18.2 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2019-20 में 16.5 प्रतिशत हो गया है, जो कि विकास प्रक्रिया का स्वभाविक परिणाम है।
- ज्ञात हो कि कृषि में मशीनीकरण का स्तर कम होने से कृषि उत्पादकता में कमी होती है। आर्थिक सर्वेक्षण 2019-20 के अनुसार भारत में कृषि का मशीनीकरण 40 प्रतिशत है, जो कि ब्राज़ील के 75 प्रतिशत तथा अमेरिका के 95 प्रतिशत से काफी कम है। इसके अलावा भारत में कृषि ऋण के क्षेत्रीय वितरण में भी असमानता विद्यमान है।
- देश के लाखों ग्रामीण परिवारों के लिये पशुधन आय का दूसरा महत्त्वपूर्ण साधन है। किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। बीते 5 वर्षों के दौरान पशुधन क्षेत्र 7.9 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहा है।
- कृषि उत्पादों के वैश्विक व्यापार में भारत अग्रणी स्थान पर है, किंतु विश्व कृषि व्यापार में भारत का योगदान मात्र 2.15 प्रतिशत ही है। भारतीय कृषि निर्यात के मुख्य भागीदारों में अमेरिका, सऊदी अरब, ईरान, नेपाल और बांग्लादेश शामिल हैं।
- उल्लेखनीय है कि वर्ष 1991 में आर्थिक सुधारों की शुरुआत से ही भारत कृषि उत्पादों के निर्यात को निरंतर बनाए हुए है।

कृषि क्षेत्र की चुनौती और समस्याएँ

- पूर्व में कृषि क्षेत्र से संबंधित भारत की रणनीति मुख्य रूप से कृषि उत्पादन बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने पर केंद्रित रही है जिसके कारण किसानों की आय में बढ़ोतरी करने पर कभी ध्यान नहीं दिया गया।

- विगत पचास वर्षों के दौरान हरित क्रांति को अपनाए जाने के बाद, भारत का खाद्य उत्पादन 3.7 गुना बढ़ा है जबकि जनसंख्या में 2.55 गुना वृद्धि हुई है, किंतु किसानों की आय वृद्धि संबंधी आँकड़े अभी भी निराशाजनक हैं।
    - ज्ञात हो कि केंद्र सरकार ने वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य निर्धारित किया है, जो कि इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है किंतु यह लक्ष्य काफी चुनौतिपूर्ण माना जा रहा है।
- लगातार बढ़ते जनसांख्यिकीय दबाव, कृषि में प्रच्छन्न रोज़गार और वैकल्पिक उपयोगों के लिये कृषि भूमि के रूपांतरण जैसे कारणों से औसत भूमि धारण (Land Holding) में भारी कमी देखी गई है। आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 1970-71 में औसत भूमि धारण 2.28 हेक्टेयर था जो वर्ष 1980-81 में घटकर 1.82 हेक्टेयर और वर्ष 1995-96 में 1.50 हेक्टेयर हो गया था।
- उच्च फसल पैदावार प्राप्त करने और कृषि उत्पादन में निरंतर वृद्धि के लिये बीज एक महत्त्वपूर्ण और बुनियादी कारक है। अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन करना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है उन बीजों का वितरण करना किंतु दुर्भाग्यवश देश के अधिकतर किसानों तक उच्च गुणवत्ता वाले बीज पहुँच ही नहीं पाते हैं।
- भारत का कृषि क्षेत्र काफी हद तक मानसून पर निर्भर करता है, प्रत्येक वर्ष देश के करोड़ों किसान परिवार बारिश के लिये प्रार्थना करते हैं। प्रकृति पर अत्यधिक निर्भरता के कारण कभी-कभी किसानों को नुकसान का भी सामना करना पड़ता है, यदि अत्यधिक बारिश होती है तो भी फसलों को नुकसान पहुँचता है और यदि कम बारिश होती है तो भी फसलों को नुकसान पहुँचता है। इसके अतिरिक्त कृषि के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन भी एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आया है और उनकी मौसम के पैटर्न को परिवर्तन करने में भी भूमिका अदा की है।
- आज़ादी के 7 दशकों बाद भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विपणन व्यवस्था गंभीर हालत में है। यथोचित विपणन सुविधाओं के अभाव में किसानों को अपने खेत की उपज को बेचने के लिये स्थानीय व्यापारियों और मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे उन्हें फसल का सही मूल्य प्राप्त हो पाता।

प्रभाव

- देश के कृषि क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न चुनौतियों और समस्याओं के परिणामस्वरूप किसान परिवारों की आय में कमी होती है और वे ऋण के बोझ तले दबते चले जाते हैं। अंतत: उनके समक्ष आत्महत्या करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचता।
- निम्न और अत्यधिक जोखिम वाली कृषि आय कृषकों की रुचि पर हानिकारक प्रभाव डालती है और वे खेती को छोड़ने के लिये मजबूर हो जाते हैं।
- इससे देश में खाद्य सुरक्षा और कृषि क्षेत्र के भविष्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपाय

- कृषि क्षेत्र समावेशी विकास के लिये एक महत्त्वपूर्ण खंड है और अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन प्रदान करता है, खासकर तब जब अर्थव्यवस्था अच्छा प्रदर्शन न कर रही हो।
- कृषि व्यय और विकास चालकों में असमानता के मुद्दे को संबोधित किया जाना चाहिये। पशुधन और मत्स्य पालन क्षेत्र में उच्च विकास के बावजूद भी इन क्षेत्रों पर किये जाने वाला व्यय अपेक्षाकृत काफी कम है। अत: पशुधन और मत्स्य पालन क्षेत्र के योगदान को देखते हुए आवश्यक है कि इन क्षेत्रों पर होने वाले व्यय में वृद्धि की जाए।
- कृषि में अनुसंधान और विकास पर खर्च को सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 0.40 प्रतिशत से बढ़ाकर 1 प्रतिशत किया जाना चाहिये।
- कृषि पर भारत की निर्भरता और जलवायु-प्रेरित आपदाओं को देखते हुए देशभर में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की 'क्लाइमेट स्मार्ट विलेज' (Climate Smart Villages) की अवधारणा के कार्यान्वयन का विस्तार किया जाना चाहिये।
- कृषि क्षेत्र में निजी निवेश को भी प्रोत्साहन किया जाना चाहिये।

कृषि क्षेत्र से संबंधित आँकड़ों को एकत्र करने के लिये एक एजेंसी की स्थापना की जानी चाहिये। यह संस्था लाभार्थियों की पहचान, सब्सिडी के बेहतर लक्ष्यीकरण और नीति निर्माण में सहायक हो सकती है।

15वें वित्त आयोग की अंतरिम रिपोर्ट

संदर्भ

भारतीय संविधान की संघीय व्यवस्था इसकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है, जो केंद्र और राज्यों के बीच शक्ति तथा कार्यों के विभाजन की अनुमति देती है और इसी आधार पर कराधान की शक्तियों को भी केंद्र एवं राज्यों के बीच विभाजित किया जाता है। केंद्र और राज्यों के मध्य वित्त विभाजन को राजकोषीय संघवाद के रूप में भी परिभाषित किया जाता है तथा वित्त आयोग इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ज्ञात हो कि भारतीय संविधान में इस बात की परिकल्पना की गई है कि वित्त आयोग देश के राजकोषीय संघवाद में संतुलन की भूमिका निभाएगा। हाल ही में 15वें वित्त आयोग ने संसद के समक्ष अपनी अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें केंद्र और राज्यों के मध्य राजस्व के विभाजन का विस्तृत विश्लेषण कर विभिन्न सिफारिशें की गई हैं।

15वें वित्त आयोग की अंतरिम रिपोर्ट

- एन.के. सिंह की अध्यक्षता में गठित 15वें वित्त आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में कमोबेश पूर्ववर्ती आयोग (14वें वित्त आयोग) की सिफारिशों को संरक्षित रखा है। आयोग ने विभाजन योग्य राजस्व में वित्त वर्ष 2020-21 हेतु राज्यों के लिये 41 प्रतिशत हिस्सेदारी की सिफारिश की है, जो कि अब तक 42 प्रतिशत थी।
- वित्त आयोग के अनुसार, राज्यों की हिस्सेदारी में हो रही कटौती साधारणतया पूर्ववर्ती जम्मू-कश्मीर राज्य के हिस्से के बराबर है, जो कि 0.85 प्रतिशत थी।
- केंद्र की हिस्सेदारी में बढ़ोतरी का मुख्य कारण नवगठित केंद्रशासित प्रदेशों (जम्मू-कश्मीर और लद्दाख) की सुरक्षा तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।
- ज्ञात हो कि 15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों में रक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये केंद्र द्वारा की गई धन राशि की मांग पर विचार करना भी शामिल था। इस संदर्भ में आयोग विशेषज्ञों की एक समिति के गठन पर विचार कर रहा है।
  - वित्त आयोग द्वारा यह कार्य विभाजन योग्य हिस्से की गणना से पूर्व सकल कर राजस्व से एक अलग कोष बनाकर किया जा सकता है, किंतु ऐसा करने से राज्यों के हिस्से के राजस्व में कमी हो सकती है।
- अन्य सिफारिशें
  - आयोग ने कुशल सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली का वैधानिक ढाँचा प्रदान करने के लिये कानून का मसौदा तैयार करने हेतु एक विशेषज्ञ समूह के गठन की सिफारिश की है। आयोग का मानना है कि हमें सरकार के सभी स्तरों पर बजट, लेखांकन और अंकेक्षण हेतु मानक प्रदान करने वाले एक वैधानिक राजकोषीय ढाँचे की आवश्यकता है।
  - वित्त वर्ष 2018-19 में राज्य सरकारों और केंद्र सरकार द्वारा प्राप्त कुल राजस्व देश की GDP का लगभग 17.5 प्रतिशत था। आयोग का विचार है कि देश का वास्तविक कर राजस्व, अनुमानित कर राजस्व स्तर से काफी कम है। इसके अलावा 1990 के दशक की शुरुआत से अब तक भारत की कर क्षमता काफी हद तक अपरिवर्तित रही है। इस संदर्भ में आयोग ने 3 प्रमुख सिफारिशें दी हैं: (1) कर आधार को व्यापक बनाना (2) कर की दरों को सरल बनाना (3) सरकार के सभी स्तरों पर कर प्रशासन की क्षमता और विशेषज्ञता को बढ़ाना।
  - वित्त आयोग ने वित्तीय वर्ष 2020-21 के लिये स्थानीय निकायों को अनुदान के रूप में 90,000 करोड़ रुपए देने की सिफारिश की है, जो कि अनुमानित विभाजन योग्य राजस्व का 4.31 प्रतिशत है।
  - इसके अतिरिक्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर (GST) के क्रियान्वयन को लेकर रिफंड में देरी और पूर्वानुमान की अपेक्षा कर संग्रह में कमी जैसी कुछ चुनौतियों का भी उल्लेख किया है।

जनसंख्या के रूप में मापदंड की आलोचना

दक्षिणी राज्यों की सरकारों ने आयोग द्वारा उपयोग किये जाने वाले जनसंख्या मापदंड की आलोचना की है। 14वें वित्त आयोग ने राज्यों के हिस्से की गणना के लिये वर्ष 1971 और वर्ष 2011 के जनगणना आँकड़ों का उपयोग किया था और 2011 की अपेक्षा 1971 के आँकड़ों को अधिक महत्त्व दिया था। 14वें वित्त आयोग के विपरीत 15वें वित्त आयोग ने सिर्फ वर्ष 2011 के जनगणना आँकड़ों का प्रयोग किया है। आयोग

ने तर्क दिया है कि मौजूदा राजकोषीय समीकरण को देखते हुए यह आवश्यक था कि नवीन जनगणना आँकड़ों का प्रयोग किया जाए। आलोचना करने वाले राज्यों का मानना है कि वर्ष 2011 के जनगणना आँकड़ों के उपयोग से उत्तर प्रदेश और बिहार जैसी बड़ी आबादी वाले राज्यों को ज़्यादा हिस्सा मिल जाएगा, जबकि कम प्रजनन दर वाले छोटे राज्यों के हिस्से में काफी कम राजस्व आएगा। हिंदी भाषी उत्तरी राज्यों (बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और झारखंड) की संयुक्त जनसंख्या 47.8 करोड़ है, जो कि देश की कुल आबादी का 39.48 प्रतिशत है। इस क्षेत्र के करदाताओं की कर राजस्व में मात्र 13.89 प्रतिशत का योगदान है, जबकि उन्हें कुल राजस्व में से 45.17 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया जाता है। दूसरी ओर आंध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों को कम आबादी के कारण कुल राजस्व में भी काफी कम हिस्सा मिलता है, जबकि देश की कुल राजस्व प्राप्ति में उनका योगदान काफी अधिक रहता है।

वित्त आयोग

- संविधान के अनुच्छेद 280 के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि संविधान के प्रारंभ से दो वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक पाँच वर्ष की समाप्ति पर या उससे पहले की अवधि में, जिसे राष्ट्रपति द्वारा आवश्यक समझा जाता है, एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा।
- इस व्यवस्था को देखते हुए पिछले वित्त आयोग के गठन की तारीख के पाँच वर्षों के भीतर अगले वित्त आयोग का गठन हो जाता है, जो एक अर्द्धन्यायिक एवं सलाहकारी निकाय है।

15वाँ वित्त आयोग

- केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 22 नवंबर, 2017 को 15वें वित्त आयोग के गठन को मंज़ूरी प्रदान की थी और 27 नवंबर, 2017 को एन.के. सिंह को 15वें वित्त आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।
    - एन.के. सिंह भारत सरकार के पूर्व सचिव एवं वर्ष 2008-14 तक बिहार से राज्यसभा के सदस्य भी रह चुके हैं।
- 15वें वित्त आयोग का कार्यकाल वर्ष 2020-25 तक है।

वित्त आयोग की आवश्यकता क्यों?

- केंद्र कर राजस्व का अधिकांश हिस्सा एकत्र करता है और कुछ निश्चित करों के संग्रह के माध्यम से बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था में योगदान देता है।
- स्थानीय मुद्दों और ज़रूरतों को निकटता से जानने के कारण राज्यों की यह ज़िम्मेदारी है कि वे अपने क्षेत्रों में लोकहित का ध्यान रखें।
- हालाँकि इन सभी कारणों के चलते कभी-कभी राज्य का खर्च उनको प्राप्त होने वाले राजस्व से कहीं अधिक हो जाता है।
- इसके अलावा व्यापक क्षेत्रीय असमानताओं के कारण कुछ राज्य दूसरों की तुलना में पर्याप्त संसाधनों का लाभ उठाने में असमर्थ हैं। इन असंतुलनों को दूर करने के लिये वित्त आयोग राज्यों के साथ साझा किये जाने वाले केंद्रीय निधियों की सीमा निर्धारित करने की सिफारिश करता है।

वित्त आयोग के कार्य

- भारत के राष्ट्रपति को यह सिफारिश करना कि संघ एवं राज्यों के बीच करों की शुद्ध प्राप्तियों को कैसे वितरित किया जाए एवं राज्यों के बीच ऐसे आगमों का आवंटन कैसे किया जाए।
- यह निर्णय लेना कि अनुच्छेद 275 के तहत संचित निधि में से राज्यों को अनुदान/सहायता दिया जाना चाहिये या नहीं।
- राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के संसाधनों की आपूर्ति हेतु राज्य की संचित निधि में संवर्द्धन के लिये आवश्यक क़दमों की सिफारिश करना।
- राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त अन्य कोई विशिष्ट निर्देश, जो देश के सुदृढ़ वित्त के हित में हो।

संरक्षणवाद की ओर भारत

संदर्भ

अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने कहा था कि "आज तक किसी भी पीढ़ी को ऐसा सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ जो हमें प्राप्त हुआ है; वह है 'एक ऐसी वैश्विक अर्थव्यवस्था का निर्माण करना जिसमें कोई पिछड़ा हुआ नहीं रहेगा।' यह हमारे लिये गंभीर उत्तरदायित्व निभाने का एक

बेहतरीन अवसर है।" संक्षेप में कहें तो वह वैश्वीकरण की बात कर रहे थे। वैश्वीकरण विश्व के एकीकरण की प्रक्रिया है, इस एकीकृत विश्व में लोग वस्तुओं और सेवाओं से लेकर विचारों एवं नवाचारों तक का आदान-प्रदान करते हैं। किंतु कुछ वर्षों से संपूर्ण विश्व में संरक्षणवाद की नीति ज़ोर पकड़ रही है, अमेरिका जैसे विकसित देश स्पष्ट तौर पर इस नीति का अनुसरण करते दिखाई दे रहे हैं। उल्लेखनीय है कि कुछ हालिया घटनाक्रमों के कारण भारत की व्यापार नीति भी संरक्षणवाद की राह पर जाती दिखाई दे रही है।

संरक्षणवाद का अर्थ

- संरक्षणवाद का अर्थ सरकार की उन कार्यवाहियों एवं नीतियों से है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रतिबंधित करती हैं। ऐसी नीतियों को प्राय: विदेशी प्रतियोगिता से स्थानीय व्यापारों एवं नौकरियों को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजन से अपनाया जाता है।
- ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से अलग होने का निर्णय, संयुक्त राज्य अमेरिका का ट्रांस पैसिफिक पार्टनरशिप से अलग होना, अमेरिका द्वारा सभी देशों से स्टील तथा एल्युमीनियम के आयात पर भारी कर लगाने जैसी विभिन्न घटनाएँ बढ़ती संरक्षणवादी प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब हैं।
- संरक्षणवाद का प्राथमिक उद्देश्य वस्तुओं या सेवाओं की कीमत में वृद्धि कर या देश में प्रवेश करने वाले आयातों की मात्रा को सीमित या प्रतिबंधित कर स्थानीय व्यवसायों या उद्योगों को अधिक प्रतिस्पर्द्धी बनाना है।
- संरक्षणवादी नीतियों में सामान्यत: आयात पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, किंतु इसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के अन्य पहलू जैसे- उत्पाद मानक और सरकारी सब्सिडी भी शामिल हो सकते हैं।
- संरक्षणवादी विचारक विकास की तीव्र प्रतिस्पर्द्धा से नवीन घरेलू उद्योगों को सरक्षण प्रदान करना आवश्यक मानते हैं, जैसे कि ब्रिटेन ने औद्योगिक क्रांति हेतु एवं अमेरिका ने आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु संरक्षणवादी नीतियों का आश्रय लिया था।
- संरक्षणवाद के समर्थक इसे एक राष्ट्र की स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने के लिये भी आवश्यक मानते हैं। इसके माध्यम से जहाँ कोई देश प्रशुल्क, कोटा, वीज़ा एवं अन्य नियमों का सहारा लेकर अपना व्यापार घाटा कम कर सकता है, तो वहीं रोज़गार व औद्योगिक वृद्धि दर को बढ़ा भी सकता है।
- विकसित देशों द्वारा उठाए जाने वाले संरक्षणवादी कदमों से उन देशों में शिक्षा और रोज़गार के अवसर तलाश रहे छात्रों के सपने एवं आकांक्षाएँ सर्वाधिक प्रभावित होती हैं। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि संरक्षणवाद की नीति दीर्घावधि में उस देश के उद्योगों को कमज़ोर करती है।
- संरक्षणवाद से घरेलू उद्योग में प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है और प्रतिस्पर्द्धा के अभाव में उद्योग के भीतर कंपनियों को कुछ नया करने की आवश्यकता नहीं रहती।

संरक्षणवाद की ओर भारत

हाल के दो घटनाक्रमों ने यह स्पष्ट संकेत दिया है कि भारत शनै: शनै: संरक्षणवाद के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है: (1) वर्ष 2020-21 का केंद्रीय बजट (2) भारत का RCEP से संबंधित व्यापार मध्यस्थों की बैठक में शामिल न होना।

- वर्ष 2020-21 का केंद्रीय बजट

अपने बजट भाषण के दौरान वित्त मंत्री ने मुक्त व्यापार समझौतों और तरजीही व्यापार समझौतों से संबंधित विभिन्न समस्याओं का हवाला देते हुए 50 से अधिक वस्तुओं के आयात पर शुल्क बढ़ाने का प्रस्ताव किया है। इस विषय पर वित्त मंत्री ने कहा कि "मुक्त व्यापार समझौतों (FTAs) के तहत आयात में वृद्धि हो रही है। FTA के कारण घरेलू उद्योगों पर खतरा उत्पन्न हो गया है। आवश्यक है कि इस प्रकार के आयात की कड़ी जाँच की जाए।" इसके अलावा सरकार ने सीमा शुल्क अधिनियम के प्रावधानों में भी काफी हद तक बदलाव किया है, इन बदलावों का उद्देश्य तीसरे देशों से उत्पन्न होने वाले (Originate From Third Countries) संदिग्ध आयातों को दंडित करना है। सरकार के इस निर्णय का उद्देश्य चीन के सामान को बहुतायत में भारत में आने से रोकना है, किंतु यह निर्णय भारत के सामान्य आयात को हतोत्साहित करेगा। 1 फरवरी को सदन में प्रस्तुत बजट में मुक्त व्यापार को लेकर वित्त मंत्री द्वारा की गई घोषणाओं से यह स्पष्ट है कि भारत संरक्षणवाद की और बढ़ने का प्रयास कर रहा है।

- व्यापार मध्यस्थों की बैठक में शामिल न होना

हाल ही में इंडोनेशिया के बाली में क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (RCEP) पर चर्चा करने के लिये मध्यस्थों की एक बैठक का आयोजन किया गया था, किंतु भारत ने इस इस बैठक में शामिल होने से इनकार कर दिया था। ज्ञात हो कि बीते वर्ष नवंबर माह में भारत सरकार

ने 16 सदस्य देशों वाले क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (Regional Comprehensive Economic Partnership-RCEP) समूह में शामिल न होने का निर्णय लिया था। इस व्यापार संधि में शामिल होने की भारत की अनिच्छा इस अनुभव से भी प्रेरित थी कि भारत को कोरिया, मलेशिया और जापान जैसे देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौतों का कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ है।

मुक्त व्यापार की अवधारणा

- मुक्त व्यापार दो या दो से अधिक देशों के बीच बनाई गई वह नीति है जो साझेदार देशों के बीच वस्तुओं या सेवाओं के असीमित निर्यात या आयात की अनुमति देता है।
- ब्रिटिश अर्थशास्त्री एडम स्मिथ तथा डेविड रिकार्डो ने तुलनात्मक लाभ की आर्थिक अवधारणा के माध्यम से मुक्त व्यापार के विचार को बढ़ावा दिया था। तुलनात्मक लाभ तब होता है जब एक देश दूसरे से बेहतर गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन कर सके।

RCEP और भारत

- क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी या RCEP एक मुक्त व्यापार समझौता है, जो कि 16 देशों के मध्य किया जाना था। विदित हो कि भारत के इसमें शामिल न होने के निर्णय के पश्चात् अब इसमें 15 देश शेष हैं। इसमें पहले 10 आसियान देश तथा उनके FTA भागीदार- भारत, चीन, जापान, कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड शामिल थे।
- इसका उद्देश्य व्यापार और निवेश को बढ़ावा देने के लिये इसके सदस्य देशों के बीच व्यापार नियमों को उदार बनाना एवं सभी 16 देशों में फैले हुए बाज़ार का एकीकरण करना है। इसका अर्थ है कि सभी सदस्य देशों के उत्पादों और सेवाओं का संपूर्ण क्षेत्र में पहुँचना आसान होगा।
- कई भारतीय उद्योगों ने चिंता ज़ाहिर की थी कि यदि चीन जैसे देशों के सस्ते उत्पादों को भारतीय बाज़ार में आसान पहुँच प्राप्त हो जाएगी तो भारतीय घरेलू उद्योग पूर्णत: तबाह हो जाएगा। ध्यातव्य है कि भारत ऐसे ऑटो-ट्रिगर तंत्र की मांग कर रहा था जो उसे ऐसे उत्पादों पर शुल्क बढ़ाने की अनुमति देगा जहाँ आयात एक निश्चित सीमा को पार कर चुका हो।
- भारत पहले से ही 16 RCEP देशों के साथ व्यापार घाटे की स्थिति में है। अपने बाज़ार को और अधिक मुक्त बनाने से स्थिति बिगड़ सकती है। गौरतलब है कि चीन के साथ भारत का कुल व्यापार 50 बिलियन डॉलर से भी अधिक का है।

इस प्रकार की नीति में निहित समस्याएँ

- सरकार ने कहा है कि अब वह अपने सभी व्यापार समझौतों की समीक्षा करेगी, इसमें आसियान देशों के साथ भारत का मुक्त व्यापार समझौता, जापान और भारत के मध्य व्यापक आर्थिक भागीदारी (CEPA) तथा दक्षिण कोरिया के साथ CEPA आदि शामिल हैं। सरकार का कहना है कि वह इन समझौतों का विश्लेषण कर भारत के हितों के साथ तालमेल स्थापित करना चाहती है।
- विशेषज्ञों के अनुसार सरकार का यह लक्ष्य जितना आसान लगता है वास्तव में उतना आसान नहीं है। यदि भारत RCEP से अपने सभी संबंध समाप्त कर लेता है, जो कि हालिया बैठक में शामिल न होने से स्पष्ट है, तो आसियान देशों, दक्षिण कोरिया और जापान के लिये भारत के साथ अपने द्विपक्षीय व्यापार समझौतों पर वार्ता करना तब तक महत्त्वपूर्ण नहीं होगा जब तक RCEP पूरा नहीं हो जाता और निकट भविष्य में इसकी कोई संभावना नहीं है।
- इसके अलावा भारत ऑस्ट्रेलिया के साथ CEPA पर विचार कर रहा है, किंतु इसके इतिहास को देखते हुए कई विश्लेषक इसे संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं। ज्ञात हो कि भारत और ऑस्ट्रेलिया के मध्य CEPA की वार्ता वर्ष 2011 में शुरू हुई थी। दोनों देशों ने दिसंबर 2015 को CEPA वार्ता लिये अंतिम समयसीमा निर्धारित की थी, किंतु RCEP पर ध्यान केंद्रित करने के कारण यह संभव नहीं हो पाया था। भारत और ऑस्ट्रेलिया के मध्य CEPA अब तक पूरा नहीं हो पाया है।
- इसी प्रकार की स्थिति भारत और यूनाइटेड किंगडम (UK) के मध्य मुक्त व्यापार समझौते (FTA) को लेकर भी है। दोनों देशों के मध्य यह समझौता तब तक संभव नहीं हो पाएगा जब तक कि UK ब्रेज़िट (Brexit) से संबंधित सारी प्रक्रियाओं को पूरा नहीं कर लेता है।
- इस प्रकार भारत के लगभग सभी व्यापार समझौते किसी-न-किसी कारणवश रुके हुए हैं और भारत जिनमें शामिल है उनकी भी समीक्षा की जा रही है। हालाँकि इस स्थिति का भारत के वैश्विक व्यापार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, किंतु यह स्थिति वैश्विक व्यापार में हो रहे अन्य परिवर्तनों के साथ मिलकर भारत के वैश्विक व्यापार के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

- अमेरिका और चीन के मध्य चल रहे व्यापार युद्ध के कारण वैश्विक स्तर पर विश्व मध्यस्थ के रूप में विश्व व्यापार संगठन (WTO) की भूमिका पर प्रश्नचिह्न लगा है। इसके परिणामस्वरूप विश्व के वे देश व्यापार सुरक्षा की कमी का सामना कर रहे हैं, जिनके पास इस संदर्भ में कोई वैकल्पिक व्यवस्था या समझौता नहीं है।

निष्कर्ष

अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों के लिये भारत की जनसांख्यिकीय निश्चित रूप से एक आकर्षक विषय हो सकता है, किंतु यह तब तक सफल नहीं होगा जब तक भारत के विशाल बाज़ार में मौजूद उपभोक्ताओं के पास आवश्यक क्रय शक्ति नहीं होगी। अत: यह स्पष्ट है कि आधुनिक, आर्थिक रूप से परस्पर और तकनीकी रूप से अविभाज्य विश्व में वैश्विक व्यापार के समक्ष एक दीवार खड़ी कर भारत का विकास सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

दृष्टि The Vision

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

भारत और अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन

संदर्भ

वैश्विक स्तर पर शिपिंग को विनियमित करने के उद्देश्य से गठित अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (IMO) में भारत की नाममात्र की उपस्थिति और हस्तक्षेप भारत के समुद्री हितों को प्रभावित कर रहा है। यह स्थिति IMO द्वारा जहाज़ों के ईंधन के संबंध में लिये गए हालिया निर्णय से भी सुस्पष्ट हो जाती है। IMO द्वारा घोषित नए नियमों के अनुसार, सभी व्यापारिक जहाज़ 1 जनवरी, 2020 से 0.5 प्रतिशत से अधिक सल्फर सामग्री वाले ईंधन का प्रयोग नहीं कर सकेंगे। ज्ञात हो कि इससे पूर्व सल्फर सामग्री की यह सीमा 3.5 प्रतिशत तक थी। IMO के इस निर्णय का भारत जैसे विकासशील देशों पर काफी अधिक प्रभाव देखने को मिलेगा। संगठन के इस निर्णय से ज़ाहिर तौर पर तेल की कीमतों में वृद्धि होगी और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। इसे देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत को अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन में अपनी भूमिका को और बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि भारत अपने हितों को ध्यान में रखकर संगठन के निर्णय को प्रभावित कर सके।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन के नए निर्णय का प्रभाव

- इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (IMO) द्वारा जारी आधिकारिक सूचना के अनुसार, संगठन के इस निर्णय से जहाज़ों से उत्सर्जित होने वाले सल्फर ऑक्साइड (SOx) में 77 प्रतिशत की गिरावट आएगी।
- जहाज़ों से सल्फर ऑक्साइड के उत्सर्जन में कटौती करने से अम्लीय वर्षा और समुद्र के अम्लीकरण को रोकने में भी मदद मिलेगी।
- सल्फर ऑक्साइड के संबंध में यह नई सीमा जहाज़ों से होने वाले प्रदूषण की रोकथाम हेतु अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (MARPOL) का हिस्सा है। ज्ञात हो कि MARPOL अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन के तत्त्वावधान में की गई एक प्रमुख पर्यावरण संधि है।
- यह निर्णय सतत् विकास लक्ष्य (SDG) 14 - स्थायी सतत् विकास के लिये महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण और उपयोग - के साथ मेल खाता है।

निर्णय से संबंधित समस्याएँ

- विश्लेषकों के अनुसार, अतीत में ऐसा कई बार देखा गया है कि इस प्रकार के निर्णयों से कंपनियों को कई तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के कई जहाज़ हैं जो कम सल्फर ऑक्साइड के साथ कार्य करने में समर्थ नहीं हैं, जिसके कारण कंपनियों को उन जहाज़ों की सेवाओं को बंद करना होगा। इसके अलावा नए नियमों से कई जहाज़ों की कार्यकुशलता में भी कमी आ सकती है।
- 0.5 प्रतिशत तक सल्फर सामग्री वाले ईंधन का उत्पादन अधिक महँगा होने के कारण जहाज़ों की परिचालन लागत भी बढ़ जाएगी।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (IMO)

- अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (IMO) संयुक्त राष्ट्र (UN) की एक विशेष संस्था है, जिसकी स्थापना वर्ष 1948 में जिनेवा सम्मेलन के दौरान एक समझौते के माध्यम से की गई थी। IMO की पहली बैठक इसकी स्थापना के लगभग 10 वर्षों पश्चात् वर्ष 1959 में हुई थी।
- वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन (IMO) के कुल 174 सदस्य तथा 3 एसोसिएट सदस्य हैं और इसका मुख्यालय लंदन में स्थित है।
- यह एक अंतर्राष्ट्रीय मानक-निर्धारण प्राधिकरण है जो मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय शिपिंग की सुरक्षा में सुधार करने और जहाज़ों द्वारा होने वाले प्रदूषण को रोकने हेतु उत्तरदायी है।
  - शिपिंग वास्तव में एक अंतर्राष्ट्रीय उद्योग है और इसे केवल तभी प्रभावी रूप से संचालित किया जा सकता है जब नियमों और मानकों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया जाए।
- ध्यातव्य है कि IMO अपनी नीतियों को लागू करने के लिये ज़िम्मेदार नहीं है और न ही IMO के पास नीतियों के प्रवर्तन हेतु कोई तंत्र मौजूद है।
- इसका मुख्य कार्य शिपिंग उद्योग के लिये एक ऐसा नियामक ढाँचा तैयार करना है जो निष्पक्ष एवं प्रभावी हो तथा जिसे सार्वभौमिक रूप से अपनाया व लागू किया जा सके।

नोट: भारत के लिये IMO के महत्त्व को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम संगठन की संरचना और कार्यप्रणाली को समझें।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन की संरचना और कार्यप्रणाली

- संगठन में एक सामान्य सभा, एक परिषद और पाँच मुख्य समितियाँ हैं। इसके अतिरिक्त प्रमुख समितियों के कार्य में सहयोग के लिये संगठन में कई उप-समितियाँ भी हैं।
- सामान्य सभा

सामान्य सभा अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन का सर्वोच्च शासनिक निकाय है। इसमें सभी सदस्य राष्ट्र शामिल होते हैं और प्रत्येक 2 वर्ष में एक बार सत्र का आयोजन किया जाता है, किंतु यदि आवश्यकता हो तो एक असाधारण सत्र भी आयोजित किया जा सकता है। सामान्य सभा मुख्य रूप से संगठन के कार्यक्रम को मंज़ूरी देने, बजट पर मतदान करने और संगठन की वित्तीय व्यवस्था का निर्धारण करने के लिये उत्तरदायी होती है। सामान्य सभा संगठन के परिषद का भी चुनाव करती है।

- परिषद

परिषद को सामान्य सभा के प्रत्येक नियमित सत्र के पश्चात् दो वर्षों के लिये सामान्य सभा द्वारा ही चुना जाता है। परिषद IMO का कार्यकारी अंग है और संगठन के कार्य की देखरेख के लिये ज़िम्मेदार होती है। परिषद के कार्य:

  - सामान्य सभा के दो सत्रों के मध्य परिषद सामान्य सभा के सभी कार्य करती है। हालाँकि सम्मेलन के अनुच्छेद 15(j) के तहत सामुद्रिक सुरक्षा और प्रदूषण रोकथाम पर सरकारों को सिफारिशें करने का कार्य सामान्य सभा के पास सुरक्षित रखा गया है।
  - परिषद संगठन के विभिन्न अंगों की गतिविधियों के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य भी करती है।
  - सामान्य सभा की मंज़ूरी के साथ महासचिव की नियुक्ति का कार्य भी परिषद द्वारा ही किया जाता है।
  - परिषद में कुल 40 सदस्य होते हैं, जिन्हें A, B तथा C श्रेणी में बाँटा जाता है।
- समितियाँ
  - समुद्री सुरक्षा समिति
  - समुद्री पर्यावरण संरक्षण समिति
  - कानूनी समिति
  - तकनीकी सहयोग समिति
  - सुविधा समिति
- संगठन की ये समितियाँ मुख्य रूप से नीतियाँ बनाने और विकसित करने, उन्हें आगे बढ़ाने और नियमों तथा दिशा-निर्देशों को पूरा करने का कार्य करती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन और भारत

- भारत वर्ष 1959 में अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन में शामिल हुआ था। वर्तमान में भारत संगठन की परिषद के सदस्यों की श्रेणी (B) में आता है।
  - श्रेणी (A): इसमें वे देश शामिल हैं जिनका सबसे अधिक हित अंतर्राष्ट्रीय शिपिंग सेवाओं से जुड़ा हुआ है। जैसे- चीन, इटली, जापान और नॉर्वे आदि।
  - श्रेणी (B): इसमें वे देश शामिल हैं जिनका सबसे अधिक हित अंतर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार से जुड़ा हुआ है। जैसे- भारत, अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया और ब्राज़ील आदि।
  - श्रेणी (C): वे देश जिनका समुद्री व्यापार और नेवीगेशन से विशेष हित जुड़ा हुआ है। जैसे- बेल्जियम, चिली, साइप्रस और डेनमार्क आदि।
- अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने के लिये IMO में भारत की भागीदारी उल्लेखनीय रूप से अपर्याप्त रही है। लंदन स्थित IMO के मुख्यालय में भारत का स्थायी प्रतिनिधि पद बीते 25 वर्षों से रिक्त है।
- भारत के विपरीत विकसित राष्ट्रों का अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन में वर्चस्व देखा जाता है। अधिकतर यूरोपीय देश अपने समुद्री हितों की रक्षा करने के लिये अपने प्रस्तावों को एकसमान रूप से आगे बढ़ाते हैं। वहीं लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रों ने अपने हितों को बढ़ावा देने के लिये लंदन स्थित IMO के मुख्यालय में अपना स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त किया है।

- IMO ने समुद्री डाकुओं की उपस्थिति के आधार पर हिंद महासागर में 'उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों' (High Risk Areas) का सीमांकन किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय नौसेना और तटरक्षक बल की मौजूदगी के बावजूद अरब सागर और भारत के लगभग पूरे दक्षिण-पश्चिमी तट को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा है।

आगे की राह

- वैश्विक समुद्री व्यापार में भारत के हितों के मद्देनज़र यह स्पष्ट है कि भारत को अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन में अपनी भागीदारी को बढ़ाने की आवश्यकता है।
- कम-से-कम समय में भारत को IMO के मुख्यालय में भारत का स्थायी प्रतिनिधि पद भरने का प्रयास करना चाहिये।

अफगानिस्तान संघर्ष और भारत

संदर्भ

हाल ही में नई दिल्ली में आयोजित रायसीना डायलॉग के पाँचवें संस्करण को संबोधित करते हुए अफगानिस्तान के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार हमदुल्ला मोहिब ने तालिबान और अमेरिका के बीच शांति वार्ता को देखते हुए प्रत्यक्ष तौर पर भारत के समक्ष अफगानिस्तान में भारतीय सैनिकों की तैनाती पर विचार करने का प्रस्ताव रखा था। आधिकारिक तौर पर आर्थिक और मानवीय सहायता के माध्यम से अफगानिस्तान की मदद करने का तर्क देते हुए भारत कई बार अफगानिस्तान को प्रत्यक्ष सैन्य सहयोग प्रदान करने से इनकार करता रहा है। हालाँकि अतीत में इस प्रकार के सभी अनुरोध अमेरिका द्वारा ही किये गए हैं, जिसके कारण उन्हें खारिज करना अपेक्षाकृत आसान था। ऐसे में अफगानिस्तान की मौजूदा स्थिति का विश्लेषण करते हुए यह जान लेना आवश्यक है कि क्या भारत को अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप करना चाहिये या नहीं।

अफगानिस्तान में संघर्ष की पृष्ठभूमि

- अमेरिका के आक्रमण से पूर्व ही अफगानिस्तान लगभग 20 वर्षों तक निरंतर युद्ध की स्थिति में रहा था। अफगानिस्तान संघर्ष की शुरुआत अफगानिस्तान में तख्तापलट के एक वर्ष पश्चात् 1979 में हुई जब सोवियत सेना ने अफगानिस्तान पर अपनी साम्यवादी सरकार का समर्थन करने के लिये आक्रमण कर दिया।
- सोवियत सेना अफगानिस्तान सरकार की ओर से अफगान मुजाहिदीनों के विरुद्ध जंग लड़ रही थी, ज्ञात हो कि इन अफगान मुजाहिदीनों को अमेरिका, पाकिस्तान, चीन और सऊदी अरब जैसे देशों का समर्थन प्राप्त था। युद्ध की शुरुआत के कुछ ही वर्षों में सोवियत सेना ने अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर कब्ज़ा कर लिया। हालाँकि इस युद्ध में सोवियत सेना के 15000 से भी अधिक सैनिक मारे गए।
- वर्ष 1989 में सोवियत संघ ने कुछ आंतरिक कारणों के परिणामस्वरूप अफगानिस्तान से अपनी सेना को वापस बुलाने का निर्णय लिया और 15 फरवरी 1989 को सोवियत सेना की अंतिम टुकड़ी भी अफगानिस्तान से वापस चली गई। हालाँकि अफगानिस्तान में अभी भी गृहयुद्ध की स्थिति बनी हुई थी।
- अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी के पश्चात् ही वहाँ तालिबान के उदय की शुरुआत होती है। तालिबान पश्तो भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'छात्र'। दरअसल तालिबान का उदय 1990 के दशक में उत्तरी पाकिस्तान में हुआ, जब सोवियत सेना अफगानिस्तान से वापस जा चुकी थी।
    - 1980 के दशक के अंत में सोवियत संघ के अफगानिस्तान से जाने के बाद वहाँ कई गुटों में आपसी संघर्ष शुरू हो गया और वहाँ के आम लोग भी मुजाहिदीनों से काफी परेशान थे। ऐसे हालात में जब तालिबान का उदय हुआ था तो अफगान लोगों ने उसका स्वागत किया।
- पश्तूनों के नेतृत्व में उभरा तालिबान, अफगानिस्तान के परिदृश्य पर पूर्णरूप से वर्ष 1994 में सामने आया। इससे पहले तालिबान धार्मिक आयोजनों या मदरसों तक सीमित था, जिसे ज़्यादातर धन सऊदी अरब से मिलता था।
- प्रारंभ में तालिबान को इसलिये लोकप्रियता मिली क्योंकि उन्होंने भ्रष्टाचार पर लगाम लगाई, अव्यवस्था पर अंकुश लगाकर अपने नियंत्रण में आने वाले इलाकों को सुरक्षित बनाया ताकि लोग व्यवसाय कर सकें।
- दक्षिण-पश्चिम अफगानिस्तान में तालिबान ने जल्द ही अपना प्रभाव बढ़ाया। सितंबर 1995 में तालिबान ने ईरान सीमा से लगे हेरात प्रांत पर कब्ज़ा कर लिया।

- धीरे-धीरे तालिबान ने अफगानिस्तान में अपना दबदबा बढ़ाना शुरू किया और वर्ष 1996 में बुरहानुद्दीन रब्बानी को सत्ता से हटाकर अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर कब्ज़ा कर लिया। वर्ष 1998 तक लगभग 90 फीसदी अफगानिस्तान पर तालिबान का नियंत्रण हो गया था।
- दुनिया का ध्यान तालिबान की ओर तब आकर्षित हुआ जब न्यूयॉर्क में वर्ष 2001 में आतंकवादी हमले किये गए। तालिबान पर आरोप लगाया गया कि उसने ओसामा बिन लादेन और अल कायदा को पनाह दी है जिसे न्यूयॉर्क हमलों का दोषी बताया जा रहा था। 7 अक्तूबर, 2001 को अमेरिका के नेतृत्व वाले गठबंधन ने अफगानिस्तान पर हमला कर दिया।
- इस प्रकार अमेरिका भी अफगान संघर्ष में शामिल हो गया और अपनी सैन्य शक्ति की बदौलत अमेरिका ने कुछ ही समय में अफगानिस्तान से तालिबान को कमोबेश समाप्त कर दिया। किंतु अफगानिस्तान में तालिबान अब भी पूर्णत: खत्म नहीं हुआ है और वह धीरे-धीरे पुन: वैश्विक परिदृश्य पर उभर रहा है।

अफगानिस्तान संघर्ष के प्रति भारत की नीति

- भारत हमेशा से तालिबान शासन का विरोध करता रहा है, भारत का सदैव यह दृष्टिकोण रहा है कि वह तालिबान से संबंधित किसी प्रत्यक्ष वार्ता में संलग्न नहीं होगा। हालाँकि वर्ष 2018 में भारत ने मास्को में तालिबान के साथ आयोजित वार्ता में शामिल होने के लिये गैर-आधिकारिक स्तर पर अपने दो सेवानिवृत्त राजनयिकों को भेजा था।
  - कुछ विशेषज्ञों का तर्क है कि भारत का तालिबान के साथ खुला संपर्क होना चाहिये क्योंकि तालिबान भी अब अफगानिस्तान की राजनीतिक प्रक्रिया का एक अंग बन गया है।
- भारत उन देशों में से एक है जिन्होंने वर्ष 1996-2001 के तालिबान शासन को मान्यता प्रदान करने से इनकार कर दिया था। वर्ष 1999 में IC-814 के अपहरण के बाद यह पहला मौका था जब भारत सरकार के प्रतिनिधि सार्वजनिक रूप से तालिबान से जुड़े मामलों में शामिल हुए थे।
- तालिबान के प्रति भारत की नीति सदैव ही स्पष्ट रही है। यहाँ तक कि भारत ने अफगानिस्तान में तालिबान विरोधी ताकतों को सहायता भी प्रदान की है।

भारत-अफगानिस्तान संबंध

- भारत और अफगानिस्तान के बीच पारंपरिक रूप से मज़बूत और मैत्रीपूर्ण संबंधों के साथ-साथ घनिष्ट तकनीकी, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंध रहे हैं।
- भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंधों की जानकारी सिंधु घाटी सभ्यता से मिलती है।
- वर्ष 1980 के दशक में सोवियत गणराज्य समर्थित डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ अफगानिस्तान को मान्यता देने वाला भारत एकमात्र गणतंत्र देश था।
- हालाँकि वर्ष 1990 के अफगान गृहयुद्ध और तालिबान सरकार के दौरान दोनों देशों के बीच आपसी संबंध प्रभावित हुए थे।

भारत के लिये अफगानिस्तान का महत्त्व

- अफगानिस्तान एशिया के चौराहे पर स्थित होने के कारण रणनीतिक महत्त्व रखता है क्योंकि यह दक्षिण एशिया को मध्य एशिया और मध्य एशिया को पश्चिम एशिया से जोड़ता है।
- भारत का संपर्क ईरान, अज़रबैजान, तुर्कमेनिस्तान तथा उज़्बेकिस्तान के साथ अफगानिस्तान के माध्यम से होता है। इसलिये अफगानिस्तान भारत के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।
- अफगानिस्तान भू-रणनीतिक दृष्टि से भी भारत के लिये महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भारत और मध्य एशिया के बीच स्थित है जो व्यापार की सुविधा भी प्रदान करता है।
- यह देश रणनीतिक रूप से तेल और गैस से समृद्ध मध्य-पूर्व और मध्य एशिया में स्थित है जो इसे एक महत्त्वपूर्ण भू-स्थानिक स्थिति प्रदान करता है।
- अफगानिस्तान पाइपलाइन मार्गों के लिये महत्त्वपूर्ण स्थान बन जाता है। साथ ही अफगानिस्तान कीमती धातुओं और खनिजों जैसे प्राकृतिक संसाधनों से भी समृद्ध है।

नोट :

क्या भारत को भेजनी चाहिये अपनी सेना ?

- वर्ष 2001 में तालिबान की समाप्ति के बाद से ही भारत अफगानिस्तान का सबसे बड़ा क्षेत्रीय भागीदार बनकर उभरा है। आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार, भारत ने अब तक अफगानिस्तान को 3 बिलियन डॉलर से अधिक की आर्थिक सहायता प्रदान की है।
- भारत ने अफगानिस्तान में कुछ प्रमुख ढाँचागत परियोजनाओं की शुरुआत की है और साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में अफगानिस्तान की क्षमता निर्माण में भी मदद की है।
- इनके अलावा बामयान प्रांत में बंद-ए-अमीर तक सड़क संपर्क, परवान प्रांत में चारिकार शहर के लिये जलापूर्ति नेटवर्क और मजार-ए-शरीफ में पॉलीटेक्नीक के निर्माण में भी भारत सहयोग दे रहा है।
- अफगानिस्तान में भारत के इतने बड़े निवेश को देखते हुए इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अफगानिस्तान में शांति स्थापित करना भारत के लिये बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।
- कई विश्लेषकों का मानना है कि यदि भारत सक्रिय सैन्य हस्तक्षेप नहीं करता है तो अमेरिकी सेना की वापसी के पश्चात् वे आतंकवादी कश्मीर घाटी के रास्ते भारत आकर राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिये यह अधिक विवेकपूर्ण होगा कि उन आतंकियों से अपने क्षेत्र में संघर्ष करने के बजाय भारत पहले ही उन्हें अफगानिस्तान में चुनौती दे।
- भारत अंतर्राष्ट्रीय पटल पर एक वैश्विक शक्ति के रूप में उभरना चाहता है और अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप भारत को यह अवसर प्रदान कर सकता है। साथ ही इसके माध्यम से भारत को विदेशी धरती पर सैन्य अभियान संचालित करने का अनुभव भी प्राप्त होगा।

प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप के विपक्ष में तर्क

- भारत के सुरक्षा और रक्षा विश्लेषकों का मानना है कि अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष रूप से सैन्य हस्तक्षेप न करने का निर्णय पूरी तरह से सही है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अफगानिस्तान में विदेशी शक्तियों द्वारा सैनिकों की तैनाती से विनाशकारी परिणाम सामने आए हैं और भारत इसे अच्छी तरह से समझता है।
- सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि सैन्य हस्तक्षेप के कारण भारत ने आम अफगानी नागरिकों और अफगानिस्तान के प्रमुख नेताओं के मध्य जो ख्याति अर्जित की है वह भी लगभग समाप्त हो जाएगी।
- यदि भारत अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप करता है तो यह भारत को एक लगातार बढ़ती हुई सैन्य प्रतिबद्धता की ओर लेकर जाएगा और अफगानिस्तान के संघर्ष के इतिहास पर गौर करें तो यह बिलकुल भी भारत के हित में नहीं है।
- यदि भारत अफगानिस्तान में प्रत्यक्ष सैन्य हस्तक्षेप करता है तो भारत को संसाधनों की कमी की चुनौती का भी सामान करना पड़ेगा।

आगे की राह

- यदि अमेरिका और तालिबान के मध्य शांति वार्ता सफल रहती है और अफगानिस्तान से अमेरिका अपनी सेना को वापस बुला लेता लेता है तो इससे अफगानिस्तान पर एक बार फिर से तालिबान का राज कायम हो जाएगा, जो कि स्पष्ट तौर पर भारत के हित में नहीं है।
- गौरतलब है कि क्षेत्रीय सहयोग के लिये अफगानिस्तान जैसे पड़ोसी देश में शांति कायम होना बेहद ज़रूरी है। साथ ही यह भी ज़रूरी है कि एक पड़ोसी के रूप में भारत को अफगानिस्तान का साथ मिलता रहे। इसके लिये अफगानिस्तान में विकास कार्यों के अलावा भारत को अफगानिस्तान सहित अन्य पड़ोसी देशों के साथ भी क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने की ज़रूरत है।
- जहाँ तक प्रश्न अफगानिस्तान की सुरक्षा का है तो भारत को चाहिये कि वह इस मुद्दे पर रूस और चीन से संवाद करने का प्रयास करे। एक अन्य उपाय यह हो सकता है कि यदि भारत चाहे तो संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से भी अफगानिस्तान में अपनी सेना भेज सकता है, लेकिन इसके लिये संयुक्त राष्ट्र को नेतृत्व की कमान संभालनी होगी।

नोट :

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

जल की गुणवत्ता: एक ज्वलंत मुद्दा

संदर्भ

प्राचीन काल में अधिकांश सभ्यताओं का उदय नदियों के तट पर हुआ है जो इस बात को इंगित करता है कि जल, जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये अनिवार्य ही नहीं, बल्कि महत्त्वपूर्ण संसाधन भी रहा है। विगत कई दशकों में तीव्र नगरीकरण, आबादी में निरंतर बढ़ोतरी, पेयजल आपूर्ति तथा सिंचाई हेतु जल की मांग में वृद्धि के साथ ही औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार इत्यादि ने जल-संसाधनों पर दबाव बढ़ा दिया है। एक ओर जल की बढ़ती मांग की आपूर्ति हेतु सतही एवं भूमिगत जल के अनियंत्रित दोहन से भूजल स्तर में गिरावट होती जा रही है तो दूसरी ओर प्रदूषकों की बढ़ती मात्रा से जल की गुणवत्ता एवं उपयोगिता में कमी आती जा रही है। अनियमित वर्षा, सूखा एवं बाढ़ जैसी आपदाओं ने भूमिगत जल पुनर्भरण को अत्यधिक प्रभावित किया है।

आज विकास की अंधी दौड़ में औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार एवं तीव्र नगरीकरण ने देश की प्रमुख नदियों विशेष रूप से गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा एवं कृष्णा को प्रदूषित कर दिया है। जल की गुणवत्ता में गिरावट का एक प्रमुख कारण बढ़ता जल प्रदूषण है।

नवंबर 2019 को भारतीय मानक ब्यूरो (Bureau of Indian Standards-BIS) द्वारा जल की गुणवत्ता पर प्रकाशित रिपोर्ट में यह बताया गया है कि जल सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक है तथा बेहतर पारिस्थितिकी के निर्माण में इसकी भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। रिपोर्ट द्वारा प्रदर्शित आँकड़ों ने एक बार पुन: जल की गुणवत्ता संबंधी प्रश्न को चर्चा के केंद्र में ला दिया है।

रिपोर्ट संबंधी प्रमुख तथ्य

- जल जीवन मिशन के अंतर्गत वर्ष 2024 तक सभी को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने संबंधी उद्देश्य के तत्त्वावधान में भारतीय मानक ब्यूरो ने 21 महानगरों में जल की गुणवत्ता का परीक्षण करने के लिये सैंपल एकत्र किये।
- राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में लिये गए जल के सैंपल भारतीय मानक ब्यूरो के परीक्षण में 28 मानकों में से 19 मानकों पर विफल साबित हुए।
- रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि भारत एक गंभीर जल संकट की चपेट में है, जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता लगातार कम होती जा रही है।
- राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में जनगणना 2011 के आँकड़ों के अनुसार, लगभग 33.41 लाख परिवार निवास करते हैं जिनमें से 27.16 लाख अर्थात् 81.30% घरों में पाइप आपूर्ति प्रणाली के माध्यम से जल उपलब्ध कराया जाता है। हालाँकि मात्र 75.20% घरों में ही उपचारित जल की आपूर्ति सुनिश्चित की जाती है।
- वर्ष 2030 तक पेयजल आपूर्ति की मांग बढ़कर वर्तमान मांग (1508 क्यूबिक मीटर) से दोगुनी हो जाएगी।
- भारतीय मानक ब्यूरो ने वर्ष 2018 में प्रकाशित नीति आयोग की रिपोर्ट के हवाले से बताया कि लगभग 600 मिलियन लोग गंभीर जल संकट का सामना कर रहे हैं। इसलिये स्वच्छ जल की गुणवत्ता मानवीय अस्तित्व के लिये बहुत आवश्यक है।

जल जीवन मिशन

- जल जीवन मिशन जल शक्ति मंत्रालय के पेयजल एवं स्वच्छता विभाग द्वारा क्रियान्वित एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना है।
- केंद्रीय बजट 2019-20 में इस मिशन की घोषणा की गई थी।

उद्देश्य

- यह योजना देश भर में स्थायी जल आपूर्ति प्रबंधन के अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये केंद्र और राज्य सरकार द्वारा चलायी जा रही अन्य सभी योजनाओं को समाहित करेगी।
- सभी लोगों को वर्ष 2024 तक सुरक्षित और पर्याप्त पेयजल उपलब्ध कराना।
- हर घर तक पाइप द्वारा जलापूर्ति सुनिश्चित करना।

स्वच्छ जल की गुणवत्ता

- जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर विद्यमान संसाधनों में जल सबसे महत्त्वपूर्ण है। जल का सबसे शुद्धतम रूप प्राकृतिक जल है, हालाँकि यह पूर्णत: शुद्ध रूप में नहीं पाया जाता। कुछ अशुद्धियाँ जल में प्राकृतिक रूप से पायी जाती हैं।
- वर्षा का जल प्रारंभ में तो विशुद्ध रहता है लेकिन भूमि के प्रवाह के साथ ही इसमें जैव एवं अजैव खनिज द्रव्य घुल जाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक जल में उपस्थित खनिज एवं अन्य पोषक तत्व, मानव सहित समस्त जीवधारियों के लिये स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक ही नहीं वरन महत्त्वपूर्ण भी हैं। गुणवत्ता की दृष्टि से पेयजल में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिये-
    - भौतिक गुणवत्ता : जल पूर्णतया रंगहीन, गंधहीन, स्वादयुक्त एवं शीतल होना चाहिये।
    - रासायनिक गुणवत्ता : जल में घुलनशील ऑक्सीजन, पीएच मान तथा खनिजों की मात्रा स्वीकृत सीमा में होनी चाहिये।
    - जैविक गुणवत्ता : जल जनित रोगकारक अशुद्धियों से पूर्णतया मुक्त होना चाहिये।

जल की उपलब्धता एवं मांग

- संपूर्ण जल का लगभग 97.25% हिस्सा महासागरों में विद्यमान है जो खारा होने के कारण पीने योग्य नहीं है। शेष 2.75% पेयजल सतही एवं भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। मृदु होने के कारण यह जल पीने तथा अन्य कार्यों के लिये सर्वथा उपयुक्त होता है। एक अनुमान के अनुसार, पृथ्वी पर कुल 8.4 घन किलोमीटर स्वच्छ जल विशेषत: हिमपेटियों एवं हिमनदों, नदियों, झीलों, झरनों, तालाबों, जलाशयों में सतही तथा धरातल के भूगर्त में भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है।
- वर्ष 2025 तक देश की जनसंख्या लगभग 1.396 बिलियन हो जाएगी और पानी की वार्षिक खपत 1093 घनमीटर होगी।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान, भारत में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 5177 घनमीटर तथा वर्ष 2001 में 1820 घनमीटर थी। नवीनतम आकलनों के अनुसार वर्तमान में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 1486 घनमीटर है जो वर्ष 2050 तक घटकर प्रतिव्यक्ति 1140 घनमीटर रह जाएगी।

जल प्रदूषण

- जल में हानिकारक पदार्थों जैसे सूक्ष्म जीव, रसायन, औद्योगिक, घरेलू या व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से उत्पन्न दूषित जल आदि के मिलने से जल प्रदूषित हो जाता है। वास्तव में इसे ही जल प्रदूषण कहते हैं।
- इस प्रकार के हानिकारक पदार्थों के मिलने से जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणधर्म प्रभावित होते हैं। जल की गुणवत्ता पर प्रदूषकों के हानिकारक दुष्प्रभावों के कारण प्रदूषित जल घरेलू, व्यावसायिक, औद्योगिक कृषि अथवा अन्य किसी भी सामान्य उपयोग के योग्य नहीं रह जाता।
- पीने के अतिरिक्त घरेलू कार्यों, सिंचाई, कृषि कार्य, मवेशियों के उपयोग, औद्योगिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों आदि में जल की भारी खपत होती है तथा उपयोग में आने वाला यह जल उपयोग के उपरान्त दूषित जल में बदल जाता है।
- इस दूषित जल में अवशेष के रूप में वाणिज्यिक गतिविधियों के दौरान जल के सम्पर्क में आए पदार्थों या रसायनों के अंश रह जाते हैं। इनकी उपस्थिति पानी को उपयोग के अनुपयुक्त बना देती है।
- यह दूषित जल जब किसी स्वच्छ जलस्रोत में मिलता है तो उसे भी दूषित कर देता है। दूषित जल में कार्बनिक एवं अकार्बनिक यौगिकों एवं रसायनों के साथ विषाणु, जीवाणु और अन्य हानिकारक सूक्ष्म जीव रहते हैं जो अपनी प्रकृति के अनुसार जलस्रोतों को प्रदूषित करते हैं।

जल प्रदूषकों का वर्गीकरण

जल में व्यापक रूप से पाए जाने वाले कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों, रोगजनकों, भौतिक अशुद्धियों और तापमान वृद्धि जैसे संवेदी कारकों को जल प्रदूषकों में शामिल किया जाता है। जल प्रदूषकों को उनके गुणधर्म एवं मापदंडों के आधार पर निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

- भौतिक प्रदूषक- भौतिक प्रदूषकों में उन पदार्थों एवं अवयवों को सम्मिलित किया जाता है जो जल के रंग, गंध, स्वाद, प्रकाश भेद्यता, संवाहक, कुल ठोस पदार्थ तथा उसके सामान्य तापक्रम इत्यादि को प्रभावित करते हैं। इनमें मुख्यत: जलमल, गाद, सिल्ट के सस्पंदित ठोस एवं तरल अथवा अन्य घुले कणों के अलावा कुछ विशेष दशाओं में तापशक्ति बिजली-गृहों एवं औद्योगिक इकाइयों से निकले प्रदूषित अवशेष इत्यादि शामिल हैं।

नोट :

- जैविक प्रदूषक- जैविक प्रदूषकों में उन अवांछित जैविक सामग्रियों को सम्मिलित किया जाता है जो जल में घुलनशील ऑक्सीजन, जैविक ऑक्सीजन मांग, रोगकारक क्षमता इत्यादि को प्रभावित करते हैं। इनमें जैविक सामग्रियाँ, रोगकारक जीवाणु, कॉलीफार्म बैक्टीरिया, शैवाल, जलकुंभी, जलीय फर्न तथा परजीवी कीड़ों के अलावा जलप्लवक इत्यादि प्रमुख हैं।
- रासायनिक प्रदूषक- रासायनिक प्रदूषकों में मुख्यत: कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायन, भारी धातुएँ तथा रेडियोधर्मी पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। ये प्रदूषक जल की अम्लीयता, क्षारीयता एवं उसकी कठोरता, रेडियोधर्मिता, विलयित ऑक्सीजन की उपलब्धता तथा रासायनिक ऑक्सीजन मांग इत्यादि को प्रभावित करते हैं।

जल प्रदूषण के कारण

- औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आज कारखानों की संख्या में वृद्धि हुई है और इन कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों को नदियों, नहरों, तालाबों आदि किसी अन्य स्रोतों में प्रवाहित कर दिया जाता है जिससे जल में रहने वाले जीव-जंतुओं व पौधों पर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है साथ ही जल पीने योग्य नहीं रहता और प्रदूषित हो जाता है।
- गाँव में लोगों के तालाबों, नहरों में नहाने, कपड़े धोने, पशुओं को नहलाने एवं बर्तन साफ करने आदि से भी ये जल स्रोत दूषित होते हैं।
- यदि जल में परमाणु परीक्षण किये जाते हैं तो जल में इनके नाभिकीय कण मिल जाते हैं और ये जल को दूषित करते हैं।
- ऐसे शहर जो नदी के किनारे बसे हैं वहाँ पर व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका शव पानी में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस शव के सड़ने व गलने से पानी में जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है, जिससे जल प्रदूषित होता है।
- प्राकृतिक क्षरणयोग्य चट्टानों के अवसाद, मिट्टी पत्थर तथा खनिज तत्त्व इत्यादि को जल स्रोतों में प्रवाहित करने से जल प्रदूषित होता है।
- व्यावसायिक पशुपालन उद्यमों, पशुशालाओं एवं बूचड़खानों से उत्पन्न कचरों का अनुचित निपटान।

जल प्रदूषण के प्रभाव

- समुद्रों में होने वाले परमाणु परीक्षण से जल में नाभिकीय कण मिल जाते हैं जो कि समुद्री जीवों व वनस्पतियों को नष्ट करते हैं और समुद्री पारिस्थितिकी संतुलन को बिगाड़ देते हैं।
- जल में कारखानों से मिलने वाले अवशिष्ट पदार्थ, गर्म जल, जल स्रोत को दूषित करने के साथ-साथ वहाँ के वातावरण को भी गर्म करते हैं जिससे वहाँ की वनस्पति व जंतुओं की संख्या कम होगी और जलीय पर्यावरण असंतुलित हो जायेगा।
- प्रदूषित जल पीने से मनुष्यों में हैजा, पेचिस, क्षय, उदर संबंधी आदि रोग उपन्न होते हैं।
- प्रदूषित जल का सेवन करने से गर्भवती महिलाओं के शरीर में हार्मोनल बदलाव होते हैं, जिससे गर्भस्थ शिशु में विकार उत्पन्न हो सकते हैं या उसकी मृत्यु हो सकती है।
- कुछ शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि त्वचा कैंसर का एक प्रमुख कारण प्रदूषित जल का सेवन है।
- पोलियो के कारण होने वाली अपंगता का भी एक प्रमुख कारण प्रदूषित जल का सेवन है।

समाधान के उपाय

देश में जल प्रदूषण को नियंत्रित करने तथा उसकी गुणवत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये वर्ष 1974 में जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम बनाया गया। जल प्रदूषण के भिन्न-भिन्न स्रोत हैं ऐसे में इनके प्रभावी नियंत्रण के लिये उत्पन्न होने वाले स्रोतों को बंद कर समुचित प्रबंधन एवं शोधन उपचार द्वारा शुद्ध किया जाना आवश्यक है। इस समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाए जा सकते हैं-

- जल बहुत ही मूल्यवान संसाधन है देश के सभी निवासियों को इसके महत्व को ध्यान में रखकर इसे संरक्षित एवं प्रदूषित होने से बचाने में स्वैच्छिक योगदान देना चाहिये।
- जल का पुनर्नवीनीकरण एवं इसका पुन: उपयोग, प्रदूषण नियंत्रण के सर्वोत्तम तरीकों में से एक है, जहाँ तक संभव हो सके इसे अपनी आदत में शामिल करना चाहिये।
- जिन क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों का समूह हो उन क्षेत्रों में सामान्य प्रवाह उपचार संयंत्रों को स्थापित करने में औद्योगिक समूहों को मिल कर कदम उठाना चाहिये, जिससे जल की गुणवत्ता प्रभावित न हो पाए।

- उपचार संयंत्रों से प्राप्त अपशिष्ट जैसे- लौह एवं अलौह सामग्रियाँ, कागज और प्लास्टिक कचरे के पुनर्नवीनीकरण द्वारा अन्य उपयोगी सामग्रियों के उत्पादन हेतु नए विकल्पों की तलाश की जानी चाहिये जिससे प्रदूषकों की मात्रा को स्रोत स्थल पर कम किया जा सके।
- मृदा परीक्षण द्वारा फसलों की आवश्यकता अनुसार समुचित मात्रा में उर्वरकों के उपयोग से जलाशय में इनके रिसाव को कम कर प्रदूषण को कम किया जा सकता है।
- किसानों को पोषक तत्व प्रबंधन तथा वाणिज्यिक उर्वरकों का सही एवं समुचित मात्रा में उपयोग करना चाहिये।
- वर्तमान से लेकर आगे आने वाले समय में औद्योगिक बहिर्स्राव से उत्पन्न प्रदूषण नियंत्रण के लिये व्यापक योजना तैयार कर समयबद्ध तरीके से इनका कार्यान्वयन कराया जाना चाहिये।
- बिना उपचारित औद्योगिक बहिर्स्रावों को निष्पादित करने वाली प्रदूषणकारी औद्योगिक इकाइयों को पानी की आपूर्ति प्रतिबंधित कर उनके लाइसेंसों को रद्द कर देना चाहिये।
- पर्यावरण अनुकूल घरेलू उत्पाद एवं प्रसाधनों का उपयोग, पर्यावरण पर बहुत कम हानिकारक प्रभाव डालता है इनका उपयोग प्रदूषण को रोकने में मददगार एवं सक्रिय भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष

हाल ही में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 'मन की बात' कार्यक्रम में स्वच्छता आंदोलन की तरह ही जन-मन की सक्रिय सहभागिता के साथ जल संरक्षण आंदोलन चलाने का आह्वान किया है। इस संकट से उबरना अकेले सरकार के वश में नहीं है। प्राप्त पेयजल का घरों में विभिन्न उपयोगों में सावधानीपूर्वक उपभोग करना, वर्षा जल का संचयन करना तथा उपयोग किये गए जल को पुन: उपयोग योग्य बनाने (वाटर रिसाइकिलिंग) के क्षेत्र में स्थानीय, प्रांतीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करना होगा। हमें शून्य जल की स्थिति से बचने के लिये कटिबद्ध होना पड़ेगा। सरकार को छोटे घरेलू वाटर रिसाइकलिंग प्लांट बनवाकर बहुमंजिली इमारतों तथा महानगरों की कालोनियों में लगाना अनिवार्य करना होगा, क्योंकि पानी की सर्वाधिक बर्बादी इन्ही इलाकों में होती है। इन पर सख्ती से रोक लगनी चाहिये। सर्वाधिक आवश्यकता जनता के स्वयं जागरूक होने की है, जैसा कि कहा भी गया है "रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून"।

नोट :

सामाजिक न्याय

स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढाँचा

संदर्भ

किसी देश के स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढाँचा उस देश की स्वास्थ्य नीति के आकलन का महत्त्वपूर्ण संकेतक होता है। विभिन्न विश्लेषकों ने बुनियादी ढाँचे को सार्वजनिक स्वास्थ्य गतिविधियों के वितरण हेतु मूल आवश्यकता के रूप में वर्णित किया है। भारत दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देशों में से एक है और गरीबी के व्यापक प्रसार के कारण यह एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। गरीबी, अत्यधिक जनसंख्या और जलवायु कारकों के कारण भारतीय रोगों के प्रति काफी सुभेद्य है। इसके बावजूद भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढाँचा काफी दयनीय स्थिति में है और नई उभरती चुनौतियों से निपटने के लिये देश के स्वास्थ्य क्षेत्र में तत्काल सुधारों की आवश्यकता है।

भारतीय स्वास्थ्य क्षेत्र का मौजूदा आकार

- अनुमान के मुताबिक, भारत का स्वास्थ्य क्षेत्र वर्ष 2022 तक 3 गुना बढ़कर 133.44 बिलियन डॉलर हो जाएगा। इसके अलावा भारत का चिकित्सा पर्यटन क्षेत्र भी प्रत्येक वर्ष 18 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है और वर्ष 2020 के अंत तक इसके 9 बिलियन डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है।
- स्वास्थ्य क्षेत्र पर सरकार का व्यय वित्तीय वर्ष 2014-15 के 1.2 प्रतिशत से बढ़कर वित्तीय वर्ष 2018-19 में 1.4 प्रतिशत हो गया है। भारत सरकार वर्ष 2025 तक सार्वजनिक स्वास्थ्य खर्च को GDP के 2.5 प्रतिशत तक बढ़ाने की योजना बना रही है।
- औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, अप्रैल 2000 से जून 2019 के बीच अस्पतालों और डायग्नोस्टिक केंद्रों ने कुल 6.34 बिलियन अमेरिकी डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) आकर्षित किया है।

स्वास्थ्य सुविधाओं संबंधी संवैधानिक प्रावधान

- भारतीय संविधान के अनुसार, स्वास्थ्य राज्य सूची का विषय है, अर्थात् इस विषय पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों के पास है।
- इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य से संबंधित अधिकांश प्रावधान संविधान के भाग- IV (राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत) में मौजूद हैं। इसमें संविधान का अनुच्छेद 38, 339(e), 41,42, 47 और 48A शामिल हैं।
- पंचायतों और नगरपालिकाओं में भी स्वास्थ्य से संबंधित कुछ प्रावधान हैं। इसमें पीने योग्य पानी, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास और सामाजिक कल्याण क्षेत्र शामिल हैं।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 (जीवन का अधिकार) का उपयोग स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँच की मांग के लिये बार-बार किया गया है।

भारतीय स्वास्थ्य क्षेत्र संबंधी समस्याएँ

- प्रशिक्षित डॉक्टरों की कमी

आँकड़ों के अनुसार, भारत के 1.3 बिलियन लोगों के लिये देश में सिर्फ 10 लाख पंजीकृत डॉक्टर हैं। इस हिसाब से भारत में प्रत्येक 13000 नागरिकों पर मात्र 1 डॉक्टर मौजूद है। उल्लेखनीय है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस संदर्भ में 1:1000 अनुपात की सिफारिश की है, यानी देश में प्रत्येक 1000 नागरिकों पर 1 डॉक्टर होना अनिवार्य है। उचित अनुपात की प्राप्ति के लिये भारत को वर्तमान में मौजूदा डॉक्टरों की संख्या को दोगुना करना होगा।

- झोला छाप संस्कृति

भारतीय चिकित्सा परिषद ने माना है कि झोला छाप डॉक्टरों (वे डॉक्टर जो न तो पंजीकृत हैं और न ही उनके पास उचित डिग्री है) की संस्कृति हमारी स्वास्थ्य प्रणाली के लिये काफी खतरनाक है। परिषद के आँकड़े बताते हैं कि देश भर में 50 प्रतिशत से अधिक डॉक्टर झोला छाप हैं। जहाँ एक ओर शहरी क्षेत्रों में 58 प्रतिशत योग्य चिकित्सक है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में यह आँकड़ा 19 प्रतिशत से भी कम है।

- अस्पताल में बेडों की अपर्याप्त संख्या

भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के बुनियादी ढाँचे का विकास अधिकांश विकसित देशों की तुलना में बहुत कम और यहाँ तक कि वैश्विक औसत से भी काफी कम है। आँकड़ों के अनुसार, देश के अस्पतालों में उपलब्ध बेडों (Beds) का घनत्व प्रति 1,000 जनसंख्या पर 0.7 है, जो कि वैश्विक औसत 2.6 और WHO द्वारा निर्धारित 3.5 से काफी कम है।

- निजी संस्थानों की महँगी शिक्षा

भारत में निजी संस्थानों की चिकित्सा शिक्षा की लागत काफी तेज़ी से बढ़ती जा रही है, वहीं सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में इतनी क्षमता नहीं है कि वे देश की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। निजी संस्थानों की अत्यधिक चिकित्सा शिक्षा लागत और सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में सीटों की कमी से देश में डॉक्टरों की कमी का संकट और गहराता जा रहा है।

कानूनों का अप्रभावी कार्यान्वयन

देश में एक ओर आधे से अधिक राज्यों में चिकित्सा सुरक्षा अधिनियम लागू हैं, परंतु इसके बावजूद समय-समय पर हिंसक घटनाएँ सामने आती रहती हैं। जानकारों के अनुसार, इसका मुख्य कारण यह है कि इन घटनाओं को रोकने के लिये जो नियम-कानून बनाए गए हैं उनका सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं हो रहा है।

भारत में स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित पहलें

- वर्ष 2014 में केंद्र सरकार ने प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान (PMSMA) की शुरुआत की थी, जिसके तहत प्रत्येक माह की 9 तारीख को सभी गर्भवती महिलाओं को व्यापक और गुणवत्तायुक्त प्रसव पूर्व देखभाल प्रदान करना सुनिश्चित किया गया है।
- 25 दिसंबर, 2014 को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 'मिशन इन्द्रधनुष' नाम से एक बूस्टर टीकाकरण कार्यक्रम की शुरुआत की थी।
- दिसंबर 2017 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने देश भर में कुपोषण की समस्या को संबोधित करने हेतु पोषण अभियान की शुरुआत की थी। अभियान का उद्देश्य परिणामोन्मुखी दृष्टिकोण के माध्यम से देश भर के छोटे बच्चों, किशोरियों और महिलाओं में कुपोषण तथा एनीमिया को चरणबद्ध तरीके से कम करना है।
- अगस्त 2018 में सरकार ने आयुष्मान भारत-राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा मिशन को मंज़ूरी दी। इस योजना के तहत देश भर के 10 करोड़ से अधिक शहरी और ग्रामीण गरीब परिवारों को स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
- 23 सितंबर, 2018 को सरकार ने प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PMJAY) की शुरुआत की, जिसके तहत देश भर के 500 मिलियन गरीबों को 5 लाख रूपए प्रति परिवार का कैशलेस स्वास्थ्य बीमा प्रदान करना है।

बजट और स्वास्थ्य क्षेत्र

- वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में कहा है कि स्वास्थ्य क्षेत्र के लिये 69,000 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है, जिसमें प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PMJAY) के लिये 6,400 करोड़ रुपए निर्धारित हैं। वित्त मंत्री के अनुसार प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना के अंतर्गत 20,000 से अधिक पैनलबद्ध अस्पताल हैं, फिर भी इस योजना के अंतर्गत स्तर-2 और स्तर-3 शहरों में गरीबों के लिये अधिक अस्पतालों की आवश्यकता है।
- इसके अलावा वित्त मंत्री ने सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) मॉडल के माध्यम से मेडिकल कॉलेजों को मौजूदा ज़िला अस्पतालों से संलग्न करने का प्रस्ताव भी किया है, ताकि देश में डॉक्टरों की कमी को दूर किया जा सके।

निष्कर्ष

भारत में नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करना नीति निर्माताओं के लिये सदैव ही प्राथमिक विषय रहा है, इसके बावजूद भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली में संसाधनों की कमी, डॉक्टरों पर कार्य का अधिक बोझ और कानूनों का अप्रभावी कार्यान्वयन जैसी कई समस्याएँ विद्यमान हैं। यदि हम भारत को एक स्वस्थ राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं तो उपर्युक्त समस्याओं को दूर किया जाना आवश्यक है।

गर्भपात संबंधित नियमों में संशोधन

संदर्भ

हाल ही में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने गर्भपात संबंधी नियमों में बदलाव के लिये मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी (Medical Termination of Pregnancy- MTP) अधिनियम, 1971 में संशोधन को मंज़ूरी दी है। केंद्र द्वारा प्रस्तावित इस अधिनियम का उद्देश्य महिलाओं के गर्भपात के लिये गर्भावस्था की सीमा को 20 सप्ताह से बढ़ाकर 24 सप्ताह करना है, इस संशोधन के माध्यम से महिलाओं के लिये वैधानिक रूप से अवांछित और सुरक्षित गर्भपात कराना आसान हो जाएगा। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले विभिन्न सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने सरकार के इस कदम का समर्थन किया है।

संशोधित प्रावधान

- केंद्र द्वारा प्रस्तावित इस बिल का उद्देश्य मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी (Medical Termination of Pregnancy- MTP) अधिनियम, 1971 में संशोधन करना है।
- संशोधन के तहत गर्भपात के लिये गर्भावस्था की सीमा को 20 सप्ताह से बढ़ाकर 24 सप्ताह करना भी शामिल है।
- मौजूदा नियमों के तहत गर्भावस्था के 20 सप्ताह तक गर्भपात कराने के लिये दो या दो से अधिक चिकित्सकों की राय लेनी आवश्यक है, किंतु हालिया संशोधन प्रस्ताव में इसे मात्र एक चिकित्सक तक सीमित करने का प्रस्ताव है। इसके अलावा गर्भावस्था के 20 से 24 सप्ताह तक गर्भपात कराने के लिये दो चिकित्सकों की राय लेना ज़रूरी होगा।
- मेडिकल बोर्ड द्वारा जाँच में पाई गई भ्रूण संबंधी विषमताओं के मामले में गर्भपात के लिये गर्भावस्था की ऊपरी सीमा लागू नहीं होगी।
- जिस महिला का गर्भपात कराया जाना है उसका नाम और अन्य जानकारियाँ उस वक्त के कानून के तहत निर्धारित किसी खास व्यक्ति के अलावा किसी और के सामने प्रकट नहीं की जाएंगी।

मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी अधिनियम, 1971

मौजूदा गर्भपात कानून लगभग पाँच दशक पुराना है और इसके तहत गर्भपात की अनुमति के लिये गर्भधारण की अधिकतम अवधि 20 सप्ताह निर्धारित की गई है।

- मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी अधिनियम, 1971 की धारा 3 की उप-धारा (2) व उप-धारा (4) के अनुसार, कोई भी पंजीकृत डॉक्टर गर्भपात कर सकता है। यदि -
  - गर्भावस्था की अवधि 12 सप्ताह से अधिक नहीं है।
  - गर्भावस्था की अवधि 12 सप्ताह से अधिक है किंतु 20 सप्ताह से अधिक नहीं है, तो गर्भपात उसी स्थिति में हो सकता है जब दो डॉक्टर ऐसा मानते हैं कि:
    - यदि गर्भपात नहीं किया गया तो गर्भवती महिला का जीवन खतरे में पड़ सकता है;
    - यदि गर्भवती महिला के स्वास्थ्य को शारीरिक या मानसिक तौर पर गंभीर खतरा पहुँचने की आशंका हो;
    - यदि गर्भाधान का कारण बलात्कार हो;
    - इस बात का गंभीर खतरा हो कि यदि बच्चे का जन्म होता है तो वह शारीरिक या मानसिक विकारों का शिकार हो सकता है जिससे उसके गंभीर रूप से विकलांग होने की आशंका है;
    - यदि बच्चों की संख्या को सीमित रखने के उद्देश्य से दंपति ने जो गर्भ निरोधक तरीका अपनाया हो वह विफल हो जाए।

नोट: ज्ञात हो कि वर्ष 1971 से पूर्व भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 312 के तहत गर्भपात को आपराधिक कृत्य घोषित किया गया था।

क्यों आवश्यक है संशोधन?

- वर्तमान में 20 सप्ताह से अधिक समय के पश्चात् गर्भपात की मांग करने वाली महिलाओं को बोझिल कानूनी प्रक्रियाओं का सामना करना पड़ता है। चूँकि गर्भपात को महिलाओं के प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाता है इसीलिये इससे महिलाओं के प्रजनन के अधिकार का हनन होता है।
- विशेषज्ञों के अनुसार, कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक स्थितियों को गर्भावस्था के पाँचवें और छठे महीने के पश्चात् ही पहचाना जा सकता है।

- गर्भपात के लिये गर्भावस्था की मौजूदा सीमा ने असुरक्षित गर्भपात कराने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया है, जिससे मातृत्व मृत्यु दर में भी वृद्धि होती है।
    - आँकड़ों से पता चलता है कि भारत में प्रत्येक दो घंटे में एक महिला की मृत्यु सिर्फ असुरक्षित गर्भपात के कारण हो जाती है। भारत में प्रत्येक वर्ष किये जाने वाले कुल गर्भपातों में से केवल 10 प्रतिशत ही कानूनी रूप से दर्ज़ किये जाते हैं।
    - उदहारणस्वरूप वर्ष 2015 में केवल 7 लाख गर्भपात ही सरकारी दस्तावेज़ों में दर्ज़ किये गए, जबकि शेष आंकलित गर्भपात गैर कानूनी ढंग से चल रहे क्लीनिक तथा झोला- छाप डॉक्टरों के द्वारा चोरी छुपे किये गए।
- MTP अधिनियम, 1971 की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह अधिनियम कई अवसरों पर चिकित्सा प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ तालमेल स्थापित करने में सक्षम नहीं रहा है।
- मूल कानून (MTP अधिनियम, 1971) के अनुसार यदि कोई नाबालिग गर्भवती अपना गर्भपात करना चाहती है, तो उसे अपने अभिभावक से लिखित सहमति प्राप्त करनी होगी। प्रस्तावित बिल के तहत इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है।

प्रस्तावित कदम के निहितार्थ

- MTP अधिनियम, 1971 को संशोधित करना महिला सशक्तीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम माना जा रहा है। यह महिलाओं को बेहतर प्रजनन संबंधी अधिकार प्रदान करेगा क्योंकि गर्भपात को महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू माना जाता है।
- इस विधेयक के माध्यम से असुरक्षित गर्भपात से होने वाली मौतें काफी हद तक रोकी जा सकती हैं, बशर्ते प्रशिक्षित चिकित्सकों द्वारा कानूनी तौर पर सेवाएँ प्रदान की जाएं।
- अक्सर 20वें सप्ताह के पश्चात् भ्रूण की असामान्यताओं का पता लगता है, जिसके कारण वांछित गर्भावस्था अवांछित हो जाती है। आमतौर पर भ्रूण विसंगति स्कैन गर्भावस्था के 20वें -21वें सप्ताह के दौरान किया जाता है। यदि इस स्कैन को करने में किसी भी कारणवश देर हो जाती है तो महिलाओं के समक्ष एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो सकती है।
    - MTP अधिनियम, 1971 में किया जा रहा संशोधन उन सभी मामलों में गर्भावस्था को समाप्त करने की अनुमति देगा जहाँ 20 सप्ताह के पश्चात् भ्रूण में कुछ विसंगति की सूचना प्राप्त होती है।
- उल्लेखनीय है कि यह संशोधन के पश्चात् यह नियम अविवाहित महिलाओं पर भी लागू होगा, जिसका अर्थ है कि अविवाहित महिलाओं को MTP अधिनियम, 1971 के उन प्रावधानों से छूट मिलेगी जिनके अनुसार अविवाहित महिलाएँ गर्भनिरोधक उपायों की असफलता को गर्भपात का कारण नहीं बता सकती हैं।

संबंधित चुनौतियाँ

- कई विश्लेषकों ने मुख्य रूप से ग्रामीण महिलाओं के संबंध में चिंता व्यक्त की है, जिनके पास डॉक्टर तक पर्याप्त पहुँच नहीं है। भारत के स्वास्थ्य क्षेत्र के बुनियादी ढाँचे को देखते हुए यह स्थिति और भी चिंताजनक हो जाती है।
    - आँकड़ों के अनुसार, भारत के 1.3 बिलियन लोगों के लिये देश में सिर्फ 10 लाख पंजीकृत डॉक्टर हैं। इस हिसाब से भारत में प्रत्येक 13000 नागरिकों पर मात्र 1 डॉक्टर मौजूद है।
- भारत में लिंग-निर्धारण को अवैध घोषित किया गया है। ऐसी चिंताएँ ज़ाहिर की जा रही हैं कि गर्भपात कानून को अधिक उदार बनाने से लिंग-निर्धारण के अवैध कृत्य को प्रोत्साहन मिलेगा।

आगे की राह

- भारतीय संविधान सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समान व्यवहार की गारंटी देता है। यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य तक सार्वभौमिक पहुँच का विषय 'जनसंख्या एवं विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन' (1994) तथा सतत् विकास लक्ष्यों के घोषणापत्र में भी अंतर्निहित है।
- जब तक प्रजनन आयु समूह की प्रत्येक महिला के पास प्रस्तावित कानून का उपयोग करने की क्षमता नहीं होगी, तब तक इस संशोधन की सफलता सुनिश्चित नहीं की जा सकेगी।

आवश्यक है कि जिस प्रकार सरकार ने सुदूर गाँवों के रोगियों को मोतियाबिंद के ऑपरेशन से लाभान्वित करने और प्रसव के लिये संस्थागत सुविधाओं का उपयोग करने में सक्षम बनाया है उसी प्रकार गर्भपात से संबंधित नियमों का लाभ प्राप्त करने के लिये भी सक्षम बनाए।

मृत्युदंड की प्रासंगिकता

संदर्भ

समाज की संरचना और तंत्र को सुचारु रूप से क्रियान्वित करने हेतु संस्थागत विधानों का सृजन किया गया जिसमें समाज के सभी वर्गों के हितों के संरक्षण, समाज की अनवरत प्रगति और संस्थाओं के बेहतर निष्पादन जैसे आयामों को एकीकृत किया गया है। संस्थागत विधानों के पारंपरिक स्वरूप में कालक्रम के साथ ही आधुनिक रूप से विकसित और व्यवस्थित संविधान का निर्माण हुआ जिसमे मानव समाज के हितों और अधिकारों को मूल अधिकारों के नाम से संकलित किया गया। समाज की प्रगति जारी रखने हेतु कई प्रकार के संस्थागत और व्यक्तिगत प्रावधान किये गए हैं जिसके परिणामस्वरूप दोनों के मध्य बेहतर तारतम्यता स्थापित की जा सके। समाज की प्रगति और मूल अधिकारों की तारतम्यता के नवीन परिदृश्य के आलोक में मृत्युदंड का विषय वैधानिक पटल पर उभर कर आया है जिसमें सामाजिक व्यवस्थाओं को बनाए रखने और किसी भी मानव के जीवन के अधिकार के मध्य द्वंद की स्थिति बनी हुई है।

मृत्युदंड और भारत

- मृत्युदंड (Capital Punishment) विश्व में किसी भी तरह के दंड कानून के तहत किसी व्यक्ति को दी जाने वाली उच्चतम सज़ा होती है। हालाँकि भारत में मृत्युदंड की सज़ा का इतिहास काफी लंबा है, किंतु हाल के दिनों में इसे खत्म करने को लेकर भी कई आंदोलन किये गए हैं।
- भारतीय दंड संहिता, 1860 में आपराधिक षड्यंत्र, हत्या, राष्ट्र के खिलाफ युद्ध छेड़ने, डकैती जैसे विभिन्न अपराधों के लिये मौत की सज़ा का प्रावधान है। इसके अलावा कई अन्य कानूनों जैसे- गैर-कानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967 में भी मृत्युदंड का प्रावधान किया गया है।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-72 में मृत्युदंड के संबंध में क्षमादान का प्रावधान किया गया है। इस अनुच्छेद के तहत भारत के राष्ट्रपति को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में मृत्युदंड पर रोक लगाने का अधिकार है।
    - इसी प्रकार संविधान का अनुच्छेद-161 राज्य के राज्यपाल को कुछ विशिष्ट मामलों में मृत्युदंड पर रोक लगाने का अधिकार देता है।
- साथ ही यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि एक सत्र न्यायालय मृत्युदंड देता है, तो सर्वप्रथम इसकी पुष्टि राज्य विशेष के उच्च न्यायालय द्वारा की जाएगी और उसके पश्चात् ही सज़ा दी जाएगी।
- 2007 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने उन 59 देशों से मौत की सज़ा पर रोक लगाने के लिये आग्रह करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया, जो अभी भी इसे बनाए हुए हैं। ज्ञात हो कि भारत इन्हीं देशों में से एक है।

मृत्युदंड का इतिहास

- मृत्युदंड का प्रावधान मानव समाज में आदिम काल से लेकर आज तक उपस्थित है, किंतु इसके पीछे के कारणों और इसके निष्पादन के तरीकों में समय के साथ निरंतर बदलाव आता गया।
- मृत्युदंड का पहला उल्लेख ईसा पूर्व अठारहवीं सदी के हम्मूराबी की विधान संहिता में मिलता है जहाँ 25 प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड का प्रावधान था। ईसा पूर्व चौदहवीं सदी की हिट्टाइट संहिता में भी इसका ज़िक्र है।
- सातवीं शताब्दी ई.पू. में एथेंस के ड्रेकोनियन कोड में सभी अपराधों के लिये मृत्युदंड की ही व्यवस्था थी। पाँचवीं सदी के रोमन कानून में भी मृत्युदंड का विधान था।
- प्राचीन भारत में भी मृत्युदंड का प्रावधान उपस्थित था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का एक पूरा अध्याय उन सभी अपराधों की सूची को समर्पित है जिनके लिये प्राणदंड या मृत्युदंड दिया जाना नियत था। मौर्य सम्राट अशोक ने पशुवध को तो तिरस्कृत किया, परंतु मृत्युदंड पर रोक नहीं लगाई। विदेशी यात्रियों के संस्मरणों से भी प्राचीन भारत में मृत्युदंड की उपस्थिति का पता चलता है।
- आधुनिक विश्व की बात करें तो एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार, अब तक 101 देशों ने मृत्युदंड की व्यवस्था पर प्रतिबंध लगा दिया है।
- साथ ही 33 देश ऐसे भी हैं जहाँ पिछले दस वर्षों से एक भी मृत्युदंड नहीं दिया गया है। लेकिन आज भी कुछ देश ऐसे हैं जिनमें मृत्युदंड दिया जाता है। इनमें मुख्यत: चीन, पाकिस्तान, भारत, अमेरिका और इंडोनेशिया शामिल हैं।

क्या मृत्युदंड को समाप्त किया जाना चाहिये?

- यह एक प्रचलित अवधारणा है कि समय के साथ दंड विधान भी अधिक नरम होते जाते हैं और क्रूरतम प्रकृति की सज़ा क्रमश: चलन से बाहर हो जाती है।
  - यह धारणा इस बुनियाद पर टिकी है कि मानव समाज निरंतर सभ्य होता जाता है और एक सभ्य समाज में ऐसा कोई कानून शेष नहीं रहना चाहिये जो उस सभ्यता के अनुकूल न हो। फाँसी की सज़ा को भी इसी कसौटी पर परखा जाता है।
- विश्व के अधिकांश देशों ने अपने संविधान से मृत्युदंड के प्रावधान को समाप्त कर दिया है। विशेषज्ञों का मत है कि भारत को भी मृत्युदंड के प्रावधान को समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि इससे किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है।
- ऐसा कोई भी अध्ययन नहीं है जो यह स्पष्ट करता हो कि अपराध को रोकने में मृत्युदंड आजीवन कारावास की अपेक्षा अधिक कारगर है। अत: मात्र कल्पनाओं के आधार पर मृत्युदंड को अधिक कठोर नहीं माना जा सकता।
- मृत्युदंड की सज़ा सुनाए जाने से लेकर सज़ा दिये जाने तक की एक लंबी अवधि अपराधी के परिवार वालों के लिये भी यातनामय होती है। उनकी इस यातना के लिये कहीं-न-कहीं राज्य ही नैतिक रूप से ज़िम्मेदार होता है।
- एकत्रित आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2000 से वर्ष 2015 के बीच सर्वोच्च न्यायालय ने 60 लोगों को मृत्युदंड की सज़ा दी और बाद में यह स्वीकार भी किया कि उनमें से 15 मामलों (25 प्रतिशत) में गलत निर्णय दिया गया है।

मृत्युदंड को समाप्त करने के प्रयास

- वर्ष 1931 में बिहार से निर्वाचित सदस्य बाबू गया प्रसाद सिंह द्वारा भारतीय दंड संहिता के तहत मृत्युदंड को समाप्त करने के लिये केंद्रीय विधानसभा में एक विधेयक पेश करने का प्रयास किया गया था।
  - सभा में यह प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया और उसके एक दिन बाद ही 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह, राजगुरु एवं सुखदेव को मृत्युदंड दे दिया गया।
- इसके पश्चात् वर्ष 1931 में ही कराची में अपने सत्र में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें मृत्युदंड को समाप्त करने की मांग की गई थी।
- वर्ष 1947 और 1949 के बीच संविधान सभा ने मृत्युदंड से संबंधित कई प्रश्नों पर विचार किया। बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर ने सभा में मृत्युदंड की समाप्ति का समर्थन किया था। हालाँकि संविधान सभा ने यह निर्णय न्यायपालिका और संसद पर छोड़ दिया था।

मृत्युदंड के पक्ष में तर्क

- मृत्युदंड के समर्थकों का मानना है कि इसकी संवैधानिकता को न केवल भारत में बल्कि अमेरिका जैसे उदार लोकतांत्रिक देशों में भी बरकरार रखा गया है। अत: सिर्फ यह मानकर मृत्युदंड की आवश्यकता से इनकार कर देना सही नहीं होगा कि कई 'सभ्य' देशों में इसे प्रतिबंधित कर दिया गया है।
- सामान्यत: हत्या जैसे गंभीर अपराधों को रोकने के लिये मृत्युदंड को सर्वश्रेष्ठ और अंतिम विकल्प के रूप में देखा जाता है। ज्ञात हो कि विधि आयोग ने भी अपनी 262वीं रिपोर्ट में मृत्युदंड की सज़ा को खत्म करने की सिफारिश नहीं की थी।
- समर्थक मानते हैं कि हत्या करने वाला व्यक्ति किसी के जीवन जीने का अधिकार छीन लेता है जिसके कारण उसके जीवन का अधिकार भी समाप्त हो जाता है। इस प्रकार मृत्युदंड एक प्रकार का प्रतिकार होता है।
- किसी भी सज़ा के प्रभाव का अंदाज़ा अपराधियों पर उसके असर से नहीं बल्कि आम नागरिकों पर पड़ने वाले उसके असर से लगाया जाना चाहिये।
- इसी से जुड़ा कांट का भी स्वतंत्र संकल्प का सिद्धांत है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति संकल्प स्वतंत्रता से युक्त है एवं वह जानता है कि समाज के पक्ष में वह जिस तरह के निर्णय लेता है, समाज भी उसके संबंध में वैसे ही निर्णय लेता है।
  - इस सिद्धांत में यह बात निहित है कि समाज में हत्या जैसे जघन्य अपराध करने वाला व्यक्ति समाज से भी मृत्युदंड जैसे निर्णय की ही अपेक्षा रख सकता है।
- कई विशेषज्ञों का मानना है कि मृत्युदंड से समाज में यह धारणा पुष्ट होती है कि बुरे के साथ बुरा और अच्छे के साथ अंतत: अच्छा ही होता है। तमाम सामाजिक समस्याओं से जूझ रहे समाजों में यह सिद्धांत व्यक्ति को सकारात्मक एवं धैर्यवान बनाता है।

इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के महत्त्वपूर्ण निर्णय

- वर्ष 1980 के बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि मृत्युदंड की सज़ा मात्र अन्यान्यतम (The Rarest of The Rare) मामलों में ही दी जा सकती है।
- वर्ष 1983 के मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड के लिये निम्नलिखित मापदंडों को निर्धारित किया:
  - अत्यंत क्रूर, कठोर और भयानक तरीके से हत्या के मामले में;
  - यदि हत्या का उद्देश्य धन प्राप्त करना है;
  - अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की हत्या करने पर;
  - किसी निर्दोष बच्चे, असहाय महिला या गणमान्य व्यक्ति की हत्या करने पर।
- वर्ष 1989 के केहर सिंह बनाम भारत संघ वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि कार्यपालिका की क्षमा शक्ति न्यायिक समीक्षा के अधीन है।

निष्कर्ष

हमें यह समझना होगा कि व्यावहारिक तौर पर ऐसी कोई व्यवस्था निर्मित नहीं की जा सकती जो कि मृत्युदंड से जुड़े सभी नैतिक प्रश्नों का समाधान कर दे। खासकर तौर पर ऐसे देशों में जो गंभीर किस्म के आतंकवाद और हिंसा जैसी समस्याओं से जूझ रहे हों। मौजूदा दौर में यह सहमति बनने लगी है कि यदि मृत्युदंड देना ही हो तो कम-से-कम पीड़ा के साथ दिया जाना चाहिये। इस संदर्भ में कार्बन मोनोऑक्साइड या नाइट्रोजन जैसी गैसों या लेथल इंजेक्शंस के प्रयोग पर विचार किया जा सकता है। अंततः महात्मा गांधी ने कहा है कि 'नफरत अपराधी से नहीं, अपराध से होनी चाहिये'।

विशेष विवाह अधिनियम और समलैंगिक विवाह

संदर्भ

बीते कुछ वर्षों में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम, लैंगिकता और विवाह के मामलों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को लेकर कई महत्त्वपूर्ण निर्णय दिये हैं, इनमें शफीन जहान बनाम अशोकन वाद (2018), शक्ति वाहिनी बनाम भारत संघ वाद (2018) और नवतेज जोहर बनाम भारत संघ वाद (2018) आदि शामिल हैं। वर्ष 2018 के नवतेज जोहर बनाम भारत संघ वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 377 को असंवैधानिक करार दिया बल्कि LGBTIQ समुदाय के अधिकारों जैसे- व्यक्तित्व को ज़ाहिर करने का अधिकार आदि को मौलिक अधिकारों के रूप में मान्यता भी प्रदान की। हालाँकि विभिन्न प्रयासों के बावजूद देश में LGBTIQ समुदाय की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन नहीं लाया जा सका है। हाल ही में केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक समलैंगिक जोड़े द्वारा विशेष विवाह अधिनियम (Special Marriage Act) की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए याचिका दायर की गई है। याचिका के अनुसार, विशेष विवाह अधिनियम उन समलैंगिक जोड़ों के साथ भेदभाव करता है जो विवाह के माध्यम से अपने संबंधों को औपचारिक मान्यता देना चाहते हैं।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954- एक नज़र से

भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में 'विवाह' को एक पवित्र एवं धार्मिक संस्था माना जाता है, यह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारत विविधता से परिपूर्ण देश है और यहाँ विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं। जाति और धर्म का भारतीय समाज पर काफी अधिक प्रभाव है तथा देश के अधिकांश हिस्सों में इन्हें विवाह का सबसे महत्त्वपूर्ण मापदंड माना जाता है। देश में कई जगहों पर आज भी अंतर-जातीय विवाह को सामाजिक अपराध माना जाता है और इसके चलते कई बेकसूर लोगों को अपनी जान भी गँवानी पड़ती है। भारत जाति व्यवस्था की काफी कठोर संरचना का अनुसरण करता है, लोगों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी जाति में ही विवाह करें, ज्ञात हो कि हरियाणा जैसे राज्यों में अंतर-जातीय विवाह को लेकर प्रत्येक वर्ष रिकॉर्ड संख्या में ऑनर किलिंग के मामले दर्ज होते हैं। इस प्रकार हमें एक ऐसे कानून की आवश्यकता है जो जाति और धर्म के विभाजन से ऊपर उठकर प्रेम आधारित विवाहों को मान्यता प्रदान कर सके। इसी के मद्देनज़र संसद ने विशेष विवाह अधिनियम, 1954 लागू किया जो भारत के नागरिकों के लिये विवाह का एक विशेष रूप प्रदान करता है, चाहे वह किसी भी जाति और धर्म का पालन करता हो।

- विशेष विवाह अधिनियम मुख्य रूप से अंतर-जातीय और अंतर-धार्मिक विवाह से संबंधित है। यह अधिनियम पंजीकरण के माध्यम से विवाह को मान्यता प्रदान करने के लिये अधिनियमित किया गया है। इसमें विवाह के दोनों पक्षों को अपने-अपने धर्म को छोड़ने की ज़रूरत नहीं होती है।
- यह अधिनियम हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन और बौद्धों आदि सभी पर लागू होता है तथा इसके दायरे में भारत के सभी राज्य आते हैं।
- इस अधिनियम के तहत वैध विवाह के लिये मूल आवश्यकता है कि विवाह के लिये दोनों पक्ष इस संबंध में सहमत हों। यदि दोनों पक्ष विवाह के लिये तैयार हैं, तो जाति, धर्म और नस्ल आदि उत्पन्न नहीं कर सकते।
- इस अधिनियम के तहत पंजीकृत किसी भी विवाहित व्यक्ति के उत्तराधिकारी और उसकी संपत्ति को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत नियंत्रित किया जाएगा। हालाँकि यदि विवाह के पक्ष हिंदू, बौद्ध, सिख या जैन धर्म से संबंधित हैं, तो उनकी संपत्ति का उत्तराधिकार हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत शासित होगा।
- अधिनियम के तहत विवाहित जोड़े तलाक के लिये तब तक याचिका नहीं दे सकते जब तक कि उनकी शादी की तारीख से एक वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हो जाती है।

क्या है विवाद ?

- केरल के समलैंगिक जोड़े ने अपनी याचिका में कहा कि उन्होंने वर्ष 2018 में सामाजिक डर से एक मंदिर में गुप्त रूप से शादी की। हालाँकि धार्मिक पिछड़ेपन के कारण धार्मिक प्राधिकारियों ने समलैंगिक जोड़े को मान्यता प्रदान करने से इनकार कर दिया, जिसके पश्चात् उन्होंने अपने विवाह को विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के तहत पंजीकृत करवाने का निर्णय लिया।
- उन्होंने जब इस संबंध में ज़िला स्तर के अधिकारी से संपर्क किया तो उसने अधिनियम के तहत विवाह को पंजीकृत करने से इनकार कर दिया, क्योंकि उक्त अधिनियम के तहत समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान नहीं की गई है।
- याचिकाकर्त्ताओं के अनुसार, समलैंगिक विवाह को मंज़ूरी प्रदान न करने से यह अधिनियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद-14 (विधि के समक्ष समता), अनुच्छेद-15(1)(a) (धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का
- प्रतिषेध), अनुच्छेद-19(1) (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) और अनुच्छेद-21 (जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) का उल्लंघन करता है।
- याचिका में कहा गया है कि यद्यपि यह अधिनियम स्पष्ट तौर पर समलैंगिकों को प्रावधानों के दायरे से बाहर नहीं करता है, किंतु अधिनियम के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त भाषा पर गौर करें तो यह स्पष्ट होता है कि इसमें समलैंगिक विवाह को शामिल नहीं किया गया है।
  - उदाहरण के लिये अधिनियम के तहत विवाह को "स्त्री और पुरुष अथवा दूल्हा और दुल्हन के मध्य संबंधों के रूप में परिभाषित किया गया है। इससे यह स्पष्ट ज़ाहिर होता है कि अधिनियम में समलैंगिक विवाह को शामिल नहीं किया गया है।
- भारत में LGBTIQ (Lesbian, Gay, Bisexual, Transgender, Intersex, Queer) समुदाय को लेकर आज भी सामाजिक जागरूकता की कमी दिखाई देती है। देश के अधिकांश हिस्सों में इसे एक मानसिक बीमारी के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। LGBTIQ समुदाय ने अपनी पहचान स्थापित करने के लिये एक लंबी लड़ाई लड़ी है, जो अभी भी जारी है।

भारत में LGBTIQ समुदाय से संबंधित मुद्दे

- प्रत्येक वर्ष जून के महीने में LGBTIQ समुदाय के हज़ारों लोग एकत्र होकर LGBTIQ के गौरव का जश्न मनाते हैं और यह उम्मीद करते हैं कि समाज उन्हें उनकी यथास्थिति में स्वीकार करे। भारत में LGBTIQ समुदाय के लोग तमाम समस्याओं का सामना करते हैं, जिनमें समुदाय से बाहर के लोगों द्वारा स्वीकृति न मिलना सबसे प्रमुख है।
- LGBTIQ समुदाय से संबंधित लोग समान अधिकारों और सामाजिक स्वीकृति के लिये लगातार लड़ रहे हैं। ट्रांस समुदाय के लोगों को विशेष रूप से समाज में अपनी पहचान ढूँढने में खासी परेशानी का सामना करना पड़ता है। वर्षों तक भारत की जनगणनाओं में ट्रांसजेंडर को तीसरे समुदाय के रूप में मान्यता नहीं दी गई।
  - भारत में आज भी ट्रांसजेंडर होना एक सामाजिक बीमारी समझी जाती है और उन्हें सामाजिक तौर पर बहिष्कृत कर दिया जाता है। इसका मुख्य कारण है कि इन्हें न तो पुरुषों की श्रेणी में रखा जा सकता है और न ही महिलाओं की, जो लैंगिक आधार पर विभाजन की पुरातन व्यवस्था का अंग है।

- प्रत्येक वर्ष हज़ारों की संख्या में LGBTIQ समुदाय के लोग हिंसा, बेरोज़गारी, भेदभाव, गरीबी और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी से संबंधित मुद्दों का सामना करते हैं। देश में अभी भी ऐसे कई स्थान हैं जहाँ लोग LGBTIQ और इससे संबंधित मुद्दों से अवगत नहीं हैं।

अन्य देशों की स्थिति

- दुनिया भर में कई सरकारों ने समलैंगिक विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की है। वर्तमान में विश्व भर में कुल 30 देश ऐसे हैं जिन्होंने समलैंगिक लोगों को शादी करने की अनुमति देने संबंधी प्रावधान बनाए हैं।
- ज्ञात हो कि उत्तरी आयरलैंड, इक्वाडोर, ताइवान और ऑस्ट्रिया जैसे देशों ने बीते वर्ष 2019 में समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान करने संबंधी कानून बनाए थे।
- इसके अलावा ऑस्ट्रेलिया, माल्टा और जर्मनी ने वर्ष 2017 में, कोलंबिया ने वर्ष 2016 में, अमेरिका, ग्रीनलैंड, आयरलैंड और फिनलैंड ने वर्ष 2015 में, लक्ज़मबर्ग और स्कॉटलैंड ने वर्ष 2014 में, इंग्लैंड और वेल्स, ब्राज़ील, फ्राँस, न्यूज़ीलैंड और उरुग्वे ने वर्ष 2013 में, डेनमार्क ने वर्ष 2012 में, अर्जेंटीना, पुर्तगाल और आइसलैंड ने वर्ष 2010 में, स्वीडन ने वर्ष 2009 में, नॉर्वे ने वर्ष 2008 में, दक्षिण अफ्रीका ने वर्ष 2006 में, स्पेन और कनाडा ने वर्ष 2005 में, बेल्जियम ने वर्ष 2003 में, नीदरलैंड्स ने वर्ष 2000 में समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान की थी।

इस संबंध में प्रमुख वाद

- राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ (2014)

वर्ष 2014 के इस वाद में न्यायालय ने कहा था कि ट्रांसजेंडर समुदाय ने अतीत में एक लंबे समय से भेदभाव का सामना किया है। न्यायालय ने ट्रांसजेंडर समुदाय के साथ स्वास्थ्य, शिक्षा और रोज़गार सहित विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले भेदभाव को भी स्वीकार किया। न्यायालय ने अपने निर्णय में ट्रांसजेंडर समुदाय से संबंधित लोगों को 'तीसरे लिंग' (Third Gender) के रूप में मान्यता प्रदान की थी। साथ ही न्यायालय ने केंद्र सरकार को ट्रांसजेंडर समुदाय को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के रूप में मान्यता देने का आदेश भी दिया था।

- नवतेज जोहर बनाम भारत संघ (2018)

वर्ष 2018 के नवतेज जोहर बनाम भारत संघ वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला देते हुए सर्वसम्मति से भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को असंवैधानिक करार दिया था। ध्यातव्य है कि धारा 377 को ब्रिटिश काल के दौरान वर्ष 1860 में भारतीय दंड संहिता में शामिल किया गया था। यह धारा प्रकृति के विरुद्ध यौन गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों को अपराधी घोषित करती थी। याचिकाकर्त्ता का कहना था कि यह धारा निजता के अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, मानवीय गरिमा और भेदभाव से सुरक्षा आदि का उल्लंघन करती है।

आगे की राह

- भारत में LGBTIQ समुदाय से संबंधित मुद्दे आम चर्चा का विषय नहीं बन पाते हैं। सामाजिक पिछड़ेपन और रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण समलैंगिक विवाह जैसे मुद्दों पर कभी बात नहीं की जाती और इन्हें सामाजिक अपराध समझा जाता है।
- हालाँकि वर्ष 2018 में धारा 377 को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था, किंतु देश में अभी भी ऐसा कोई अधिनियम नहीं है जो कानूनी तौर पर समलैंगिक विवाह को मान्यता देता हो।
- भारत में समलैंगिक वाले दो वयस्क अपनी सहमति से विवाह तो कर सकते हैं, किंतु उन्हें कानूनी तौर पर मान्यता एवं सुरक्षा प्रदान करने को लेकर कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। आज भी भारत में समलैंगिक जोड़ों के पास कोई कानूनी अधिकार जैसे- विवाह का पंजीकरण, विरासत, उत्तराधिकार और गोद लेना आदि नहीं है।

अत: यह कहा जा सकता है कि हाल ही में केरल में दायर याचिका भारत के समक्ष समलैंगिक विवाह से संबंधित विभिन्न मुद्दों को संबोधित करने का एक अच्छा अवसर हो सकता है। आवश्यक है कि इस संदर्भ में गंभीरता से विचार किया जाए और जल्द-से-जल्द कानून का निर्माण किया जाए।

भारत में कुपोषण : कारण और प्रयास

संदर्भ

बीते कुछ वर्षों में भारत में कुपोषण को लेकर नए सिरे से चर्चा शुरू हुई है। अक्तूबर 2019 में जारी वैश्विक भुखमरी सूचकांक में भारत 117 देशों में से 102वें स्थान पर रहा था, जबकि वर्ष 2018 में भारत 103वें स्थान पर था। देश में कुपोषण की समस्या को संबोधित करने की तात्कालिकता हाल ही में वित्त मंत्री के बजट भाषण में भी देखने को मिली थी। वर्ष 2017 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 जारी की गई थी, जिसमें नागरिकों की उत्पादकता पर कुपोषण के नकारात्मक प्रभाव और देश में मृत्यु दर में इसके योगदान पर प्रकाश डाला गया था। हालाँकि सरकार द्वारा इस संदर्भ में काफी प्रयास किये गए हैं और विभिन्न प्रकार की योजनाएँ चलाई जा रही हैं, किंतु इन योजनाओं और प्रयासों के बावजूद हम देश में कुपोषण की चुनौती से पूर्णत: निपटने में असमर्थ रहे हैं। इससे न केवल भारत के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है, बल्कि वैश्विक स्तर पर भारत की छवि भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है।

भारत और कुपोषण

विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों में कुपोषण के विभिन्न संकेतकों पर भारत का प्रदर्शन असंतोषजनक रहा है। यूनिसेफ (UNICEF) के अनुसार, वर्ष 2017 में सबसे कम वजन वाले बच्चों की संख्या वाले देशों में भारत 10वें स्थान पर था। इसके अलावा वर्ष 2019 में 'द लैंसेट' नामक पत्रिका द्वारा जारी रिपोर्ट में यह बात सामने आई थी कि भारत में पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की 1.04 मिलियन मौंतों में से तकरीबन दो-तिहाई की मृत्यु का कारण कुपोषण है। देश में फैले कुपोषण को लेकर उक्त आँकड़े काफी चिंताजनक हैं। अपनी एक हालिया रिपोर्ट में विश्व बैंक ने कहा था कि वर्ष 1990 से वर्ष 2018 के बीच भारत ने गरीबी से लड़ने के लिये अतुलनीय कार्य किया है और इससे देश में गरीबी दर में काफी गिरावट दर्ज की गई है। इस अवधि में भारत की गरीबी दर तकरीबन आधी रह गई है। यद्यपि देश में गरीबी दर में गिरावट आ रही है, किंतु कुपोषण और भूख की समस्या आज भी देश में बरकरार है। हाल ही में जारी 'द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रन- 2019' रिपोर्ट के अनुसार, विश्व में 5 वर्ष तक की उम्र के प्रत्येक 3 बच्चों में से एक बच्चा कुपोषण अथवा अल्पवज़न की समस्या से ग्रस्त है। पूरे विश्व में लगभग 200 मिलियन तथा भारत में प्रत्येक दूसरा बच्चा कुपोषण के किसी-न-किसी रूप से ग्रस्त है। रिपोर्ट से यह भी ज्ञात हुआ कि वर्ष 2018 में भारत में कुपोषण के कारण 5 वर्ष से कम उम्र के लगभग 8.8 लाख बच्चों की मृत्यु हुई जो कि नाइजीरिया (8.6 लाख), पाकिस्तान (4.09 लाख) और कांगो गणराज्य (2.96 लाख) से भी अधिक है। आँकड़े बताते हैं कि भारत में 6 से 23 महीने के कुल बच्चों में से मात्र 9.6 प्रतिशत को ही न्यूनतम स्वीकार्य आहार प्राप्त हो पाता है। हालाँकि ऐसा नहीं है कि देश में कुपोषण की समस्या केवल बच्चों के मध्य ही है, वर्ष 2017 के आँकड़ों पर गौर करें तो वयस्कों में देश की 23 प्रतिशत महिलाएँ और 20 प्रतिशत पुरुष कुपोषण का सामना कर रहे हैं। कुपोषण से संबंधित ये तथ्य देश में कुपोषण की चुनौती से निपटने के लिये 1990 के दशक में शुरू हुई योजनाओं को लेकर चिंता को स्पष्ट करते हैं। अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन का कहना है कि देश में कुपोषण और भूख से पीड़ित बच्चों की स्थिति काफी खतरनाक है और इससे निपटने के लिये जल्द-से-जल्द नए विकल्पों को खोजा जाना चाहिये। जन्म के बाद बच्चों को जिन पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें वह नहीं पाता है। भारत में तो स्थिति यह है कि बच्चों का न तो सही ढंग से टीकाकरण हो पाता है और न ही उन्हें इलाज की उचित व्यवस्था मिल पाती है, ऐसी स्थिति में कुपोषण जैसी समस्याएँ और अधिक गंभीर हो जाती हैं।

कुपोषण का अर्थ ?

कुपोषण (Malnutrition) वह अवस्था है जिसमें पौष्टिक पदार्थ और भोजन, अव्यवस्थित रूप से ग्रहण करने के कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है। चूँकि हम स्वस्थ रहने के लिये भोजन के ज़रिये ऊर्जा और पोषक तत्त्व प्राप्त करते हैं, लेकिन यदि भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिजों सहित पर्याप्त पोषक तत्त्व नहीं मिलते हैं तो हम कुपोषण के शिकार हो सकते हैं। कुपोषण तब भी होता है जब किसी व्यक्ति के आहार में पोषक तत्त्वों की सही मात्रा उपलब्ध नहीं होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ के अनुसार कुपोषण के तीन प्रमुख लक्षण हैं:

- नाटापन (Stunting) - यदि किसी बच्चे का कद उसकी आयु के अनुपात में कम रह जाता है तो उसे नाटापन कहते हैं।
- निर्बलता (Wasting) - यदि किसी बच्चे का वज़न उसके कद के अनुपात में कम होता है तो उसे निर्बलता कहा जाता है।
- कम वज़न (Underweight) - आयु के अनुपात में कम वजन वाले बच्चों को 'अंडरवेट' कहा जाता है।

भारतीय संविधान और कुपोषण

- यद्यपि संविधान के अनुच्छेद-21 और अनुच्छेद-47 भारत सरकार को सभी नागरिकों के लिये पर्याप्त भोजन के साथ एक सम्मानित जीवन सुनिश्चित करने हेतु उचित उपाय करने के लिये बाध्य करते हैं। किंतु भारतीय संविधान में भोजन के अधिकार को 'मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता नहीं प्रदान की गई है।
  - अनुच्छेद 21 के मुताबिक, किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा निजी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। वहीं संविधान के अनुच्छेद 47 के अनुसार, राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों के रूप में शामिल करेंगे।
- इस प्रकार संविधान के मूल अधिकारों से संबंधित प्रावधानों में अप्रत्यक्ष जबकि राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों से संबंधित प्रावधानों में प्रत्यक्ष रूप से कुपोषण को खत्म करने की बात की गई है।

कुपोषण का प्रभाव

- शरीर को लंबे समय तक संतुलित आहार न मिलने से व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण वह आसानी से किसी भी बीमारी का शिकार हो सकता है।
- कुपोषण बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता है। आँकड़े बताते हैं कि छोटी उम्र के बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण कुपोषण ही होता है। स्त्रियों में रक्ताल्पता या घेंघा रोग अथवा बच्चों में सूखा रोग या रतौंधी और यहाँ तक कि अंधत्व भी कुपोषण का ही दुष्परिणाम है।
- कुपोषण का सबसे गंभीर प्रभाव मानव उत्पादकता पर देखने को मिलता है और इसके प्रभाव से मानव उत्पादकता लगभग 10-15 प्रतिशत तक कम हो जाती है, जो कि अंतत: देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है।

कुपोषण के कारण

- हालिया आँकड़े बताते हैं कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली कुल जनसंख्या का लगभग 25.7 प्रतिशत हिस्सा अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 13.7 प्रतिशत के करीब है। यद्यपि गरीबी अकेले कुपोषण को जन्म नहीं देती, किंतु यह आम लोगों के लिये पौष्टिक भोजन की उपलब्धता को प्रभावित कर सकती है।
- अधिकांश भोजन और पोषण संबंधी संकट भोजन की कमी के कारण उत्पन्न नहीं होते हैं, बल्कि इसलिये उत्पन्न होते हैं क्योंकि लोग पर्याप्त भोजन प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं।
- जल जीवन का पर्याय है। पीने योग्य पानी की कमी, खराब स्वच्छता और खतरनाक स्वच्छता प्रथाओं के कारण आम लोग जल जनित बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं, जो कि कुपोषण के प्रत्यक्ष कारणों में से एक है।
- देश में पौष्टिक और गुणवत्तापूर्ण आहार के संबंध में जागरूकता की कमी स्पष्ट दिखाई देती है जिसके कारण तकरीबन पूरा परिवार कुपोषण का शिकार हो जाता है।
- आँकड़ों के अनुसार, भारत के 1.3 बिलियन लोगों के लिये देश में सिर्फ 10 लाख पंजीकृत डॉक्टर हैं। इस हिसाब से भारत में प्रत्येक 13000 नागरिकों पर मात्र 1 डॉक्टर मौजूद है। उल्लेखनीय है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस संदर्भ में 1:1000 अनुपात की सिफारिश की है, यानी देश में प्रत्येक 1000 नागरिकों पर 1 डॉक्टर होना अनिवार्य है। इस प्रकार देश में स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता भी कुपोषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।
- बीते कुछ दशकों में जलवायु परिवर्तन से संबंधित प्राकृतिक आपदाओं जैसे- सूखा, चक्रवात, बाढ़, आदि की संख्या में काफी वृद्धि देखने को मिली है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा किये गए अध्ययन के अनुसार विश्व के 40 से अधिक विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उत्पादन में हो रही गिरावट आने वाले वर्षों में भूख से पीड़ित लोगों की संख्या में नाटकीय रूप से वृद्धि कर सकती है।

सरकार द्वारा किये गए प्रयास

- राष्ट्रीय पोषण नीति 1993

राष्ट्रीय पोषण नीति को सरकार द्वारा वर्ष 1993 में अंगीकार किया गया था। इसके अंतर्गत कुपोषण मिटाने और सबके लिये इष्टतम पोषण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये बहु-सेक्टर संबंधी योजना की वकालत की गई। यह योजना देश भर में पोषण के स्तर की निगरानी करने तथा अच्छे पोषण की आवश्यकता व कुपोषण रोकने की ज़रूरत के संबंध में सरकारी मशीनरी को सुग्राही बनाने पर ज़ोर देती है।

- मिड-डे मील कार्यक्रम

मिड-डे मील कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 1995 में केंद्र प्रायोजित योजना के रूप में की गई थी। इसके पश्चात् वर्ष 2004 में कार्यक्रम में व्यापक परिवर्तन करते हुए मेनू आधारित पका हुआ गर्म भोजन देने की व्यवस्था प्रारंभ की गई। इस योजना के तहत न्यूनतम 200 दिनों हेतु निम्न प्राथमिक स्तर के लिये प्रतिदिन न्यूनतम 300 कैलोरी ऊर्जा एवं 8-12 ग्राम प्रोटीन तथा उच्च प्राथमिक स्तर के लिये न्यूनतम 700 ग्राम कैलोरी ऊर्जा एवं 20 ग्राम प्रोटीन देने का प्रावधान है। यह कार्यक्रम मानव संसाधन विकास मंत्रालय के स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग के अंतर्गत आता है।

- भारतीय पोषण कृषि कोष

महिला और बाल विकास मंत्रालय ने वर्ष 2019 में भारतीय पोषण कृषि कोष (BPKK) की स्थापना की थी। इसका उद्देश्य कुपोषण को दूर करने के लिये बहुक्षेत्रीय ढाँचा विकसित करना है जिसके तहत बेहतर पोषक उत्पादों हेतु 128 कृषि जलवायु क्षेत्रों में विविध फसलों के उत्पादन के उत्पादन पर ज़ोर दिया जाएगा।

- पोषण अभियान

वर्ष 2017 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने देश भर में कुपोषण की समस्या को संबोधित करने के लिये पोषण अभियान की शुरुआत की थी। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य परिणामोन्मुखी दृष्टिकोण के माध्यम से देश भर के छोटे बच्चों, किशोरियों और महिलाओं में कुपोषण तथा एनीमिया को चरणबद्ध तरीके से कम करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अभियान के तहत राज्य एवं केंद्रशासित प्रदेशों के सभी ज़िलों को शामिल किया गया है।

कार्यक्रमों की असमर्थता का कारण

- बजट 2020 ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि कई पोषण आधारित योजनाओं के तहत किया गया व्यय उनके अधीन आवंटित की गई राशि की तुलना में काफी कम है।
- किसी भी योजना के लिये आवंटित वित्त संसाधनों के अल्प-उपयोग से आगामी वर्षों के लिये होने वाला आवंटन भी प्रभावित होता है, जिससे बजट को बढ़ाने और पोषण योजनाओं पर ध्यान केंद्रित करने की संभावना भी सीमित हो जाती है।
- कई विशेषज्ञ कृषि को कुपोषण से संबंधित समस्याओं को संबोधित करने का अच्छा तरीका मानते हैं। किंतु देश की पोषण आधारित अधिकांश योजनाओं में इस और ध्यान ही नहीं दिया गया है। पोषण आधारित योजनाओं और कृषि के मध्य संबंध स्थापित करना आवश्यक है, क्योंकि देश की अधिकांश ग्रामीण जनसंख्या आज भी कृषि क्षेत्र पर निर्भर है और सर्वाधिक कुपोषण ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है।
- आँकड़े दर्शाते हैं कि पोषण अभियान, जो कि कुपोषण को संबोधित करने की एक बड़ी पहल है, के लिये आवंटित कुल राशि का 72 प्रतिशत हिस्सा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर खर्च किया जा रहा है, जिसके कारण अभियान के मूल उद्देश्य पीछे छूट रहे हैं।

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भोजन में पोषक तत्त्वों की कमी कुपोषण का सबसे प्रमुख कारण है किंतु समाज के एक बड़े हिस्से में इस संबंध में जागरूकता की कमी स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। आवश्यक है कि कुपोषण संबंधी समस्याओं को संबोधित करने के लिये जल्द-से-जल्द आवश्यक कदम उठाए जाएँ, ताकि देश के आर्थिक विकास में कुपोषण के कारण उत्पन्न बाधा को समाप्त किया जा सके।

सड़क दुर्घटना: कारण और प्रयास

संदर्भ

अर्थव्यवस्था की गति को रफ्तार देती सड़कें देश के विकास एजेंडे में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सड़कें उत्पादकों को बाज़ार से, श्रमिकों को नौकरियों से, छात्रों को स्कूल से और बीमारों को अस्पताल से जोड़ती हैं। हालाँकि सड़कें विकास में केवल तभी योगदान दे सकती हैं जब वे यात्रियों के लिये सुरक्षित हों। बीते वर्ष विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने वैश्विक सड़क सुरक्षा सप्ताह के दौरान एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसके अनुसार वैश्विक स्तर पर सड़क दुर्घटनाओं में प्रतिवर्ष 1.35 मिलियन से अधिक मौतें होती हैं एवं 50 मिलियन से अधिक लोगों को गंभीर शारीरिक चोटें आती हैं। देश के विकास में मानव पूंजी के महत्त्व को देखते हुए उक्त आँकड़ा गंभीर चिंता का विषय है। आवश्यक है कि सड़क सुरक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करते हुए इस संदर्भ में आवश्यक उपायों की खोज की जाए।

सड़क दुर्घटना और भारत

- आए दिन सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाएँ भारत के लिये एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। विश्व सड़क सांख्यिकी- 2018 के अनुसार, विश्व के 199 देशों में सड़क दुर्घटना से होने वाली मौतों की संख्या में भारत पहले स्थान पर था।
- सड़क सुरक्षा पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, विश्व में सड़क दुर्घटनाओं के कारण होने वाली कुल मौतों में से 11 प्रतिशत भारत में होती हैं। भारत के सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में वर्ष 2018 में आधिकारिक तौर पर 4,67,044 सड़क दुर्घटनाएँ दर्ज की गईं।
- सड़क सुरक्षा पर वैश्विक स्थिति रिपोर्ट- 2018 के अनुसार, विश्व भर में सड़क दुर्घटनाओं के कारण प्रत्येक 23 सेकंड में एक व्यक्ति की मृत्यु होती है।
- सड़क दुर्घटनाओं के कारण भारत को होने वाले नुकसान को लेकर विश्व बैंक के नवीनतम आकलन के अनुसार, 18-45 आयु वर्ग के सड़क उपयोगकर्त्ताओं की दुर्घटनाओं में होने वाली मृत्यु दर सर्वाधिक 69 प्रतिशत है।
- इसके अलावा 54 प्रतिशत मौतें और गंभीर चोटें मुख्य रूप से संवेदनशील वर्गों जैसे- पैदल यात्री, साइकिल चालक और दोपहिया वाहन सवार आदि में देखी जाती हैं।
- भारत में 5-29 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों और युवा वयस्कों में सड़क दुर्घटना मृत्यु का सबसे बड़ा कारण है। वर्ष 2017 में तमिलनाडु में सबसे अधिक सड़क दुर्घटनाएँ दर्ज की गई थीं, किंतु सड़क दुर्घटना में मारे गए लोगों की संख्या उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक थी।

बढ़ती सड़क दुर्घटनाओं का कारण

- कानून प्रवर्तन की समस्या

केंद्र सरकार ने बीते वर्ष मोटर वाहन अधिनियम में संशोधन कर सड़क दुर्घटनाओं को कम करने के उद्देश्य से इसके प्रावधानों को बेहद कठोर करने का प्रयास किया था, साथ ही वाहन सुरक्षा के लिये नए इंजीनियरिंग मानक लागू किये गए थे, किंतु इसके बावजूद भी सड़क सुरक्षा का जोखिम लगातार बढ़ता जा रहा है। यह इस ओर संकेत करता है कि भारत के कानून प्रवर्तन तंत्र में कहीं-न-कहीं कमी विद्यमान है। कानून प्रवर्तन के लिये ज़िम्मेदार राज्य सरकारें इस ओर उदासीन बनी हुई हैं।

- यातायात नियमों का उल्लंघन

आँकड़ों के मुताबिक, देश भर में होने वाली कुल सड़क दुर्घटनाओं में से 76 प्रतिशत दुर्घटनाएँ ओवर स्पीडिंग और गलत साइड पर गाड़ी चलाने जैसे यातायात नियमों के उल्लंघन के कारण होती हैं। स्पष्ट है कि जब तक इन घटनाओं को नहीं रोका जाएगा तब तक देश में सड़क दुर्घटनाओं को कम करना संभव नहीं होगा।

- ट्रैफिक इंजीनियरिंग

कुल सड़क दुर्घटनाओं में दोपहिया वाहनों और पैदल चलने वालों की हिस्सेदारी सबसे अधिक है, किंतु इसके बावजूद सड़क यातायात इंजीनियरिंग और नियोजन के दौरान इस विषय पर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत में सड़क यातायात इंजीनियरिंग और नियोजन केवल सड़कों को विस्तृत करने तक ही सीमित है, जिसके कारण कई बार सड़कों और राजमार्गों पर ब्लैक स्पॉट (Black Spot) बन जाते हैं। ब्लैक स्पॉट वे स्थान होते हैं जहाँ सड़क दुर्घटना की संभावना सबसे अधिक रहती है।

- आपातकालीन चिकित्सीय सुविधाओं का अभाव

देश के अधिकांश राजमार्गों में दुर्घटनास्थल पर प्राथमिक चिकित्सा और पीड़ित को अस्पताल तक ले जाने के लिये परिवहन की अव्यवस्था देखी जाती है, जिसके कारण दुर्घटना में मरने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि होती है।

- निगरानी की कमी

निगरानी के बुनियादी ढाँचे की अनुपस्थिति के कारण 'हिट एंड रन' से संबंधित अधिकांश मामलों में जाँच ही संभव नहीं हो पाती है। आँकड़े बताते हैं कि देश में दोपहिया वाहनों पर दुर्घटना के शिकार होने वाले 73 प्रतिशत लोग हेलमेट नहीं पहनते हैं, जबकि चार पहिया वाहनों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा सीट-बेल्ट का प्रयोग नहीं करना है।

- गुणवत्तापूर्ण ड्राइविंग स्कूलों की कमी

वर्ष 2016 के आँकड़ों के अनुसार, सड़क दुर्घटनाओं के कारण होने वाली 80 प्रतिशत मौतों के लिये वाहन का चालक प्रत्यक्ष रूप से ज़िम्मेदार था। यह आँकड़ा ज़ाहिर तौर पर देश में अच्छे ड्राइविंग स्कूलों की कमी को रेखांकित करता है।

नोट :

सड़क सुरक्षा का महत्त्व

- सड़क परिवहन भारत में यातायात की हिस्सेदारी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान के संदर्भ में परिवहन का प्रमुख साधन है। सड़क परिवहन की मांग को पूरा करने के लिये वाहनों की संख्या और सड़क नेटवर्क की लंबाई में बीते वर्षों में काफी वृद्धि हुई है।
- देश में सड़क नेटवर्क के विस्तार, गाड़ियों की संख्या में वृद्धि और शहरीकरण का नकारात्मक पक्ष सड़क दुर्घटनाओं में हो रही वृद्धि के रूप में सामने आया है। सड़क दुर्घटना देश में मृत्यु और विकलांगता के प्रमुख कारणों में से एक है, देश को जिसकी भारी सामाजिक-आर्थिक लागत चुकानी पड़ती है।
- इसके कारण न केवल देश के मानव संसाधन को नुकसान पहुँचता है बल्कि अर्थव्यवस्था भी नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। आँकड़ों के अनुसार, भारत को प्रतिवर्ष सड़क दुर्घटनाओं के कारण होने वाला नुकसान भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 3 प्रतिशत है।
- वर्ष 2016 में सड़क दुर्घटनाओं के शिकार लोगों के आँकड़ों पर गौर करें तो पता चलता है कि 18-45 वर्ष के उत्पादक आयु समूह की सड़क घटनाओं में कुल 68.6 प्रतिशत की हिस्सेदारी थी। स्पष्ट है कि भारत को सड़क दुर्घटनाओं के कारण काफी अधिक नुकसान का सामना करना पड़ता है, जबकि इनमें से अधिकांश घटनाओं को समय रहते रोका जा सकता है।

सरकार द्वारा किये गए प्रयास

- सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने सड़क सुरक्षा में सुधार के लिये अब तक कई उल्लेखनीय कदम उठाए हैं:
  - मंत्रालय ने राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा नीति के तहत विभिन्न नीतिगत उपायों की रूपरेखा तैयार की है, जिसमें जागरूकता को बढ़ावा देना, सड़क सुरक्षा सूचना डेटाबेस की स्थापना, सुरक्षित सड़क हेतु बुनियादी ढाँचे को प्रोत्साहित करना और सुरक्षा कानूनों का प्रवर्तन आदि शामिल हैं।
  - सड़क सुरक्षा के मामलों में नीतिगत निर्णय लेने के लिये सर्वोच्च निकाय के रूप में राष्ट्रीय सड़क सुरक्षा परिषद का गठन करना।
  - सड़क सुरक्षा के बारे में बच्चों के बीच जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से 'स्वच्छ सफर' और 'सुरक्षित यात्रा' नाम से दो कॉमिक बुक्स भी जारी की गई हैं।
  - VAHAN और SARATHI नाम से दो एप भी शुरू किये गए हैं ताकि लाइसेंस और वाहन पंजीकरण जारी करने में होने वाले भ्रष्टाचार को नियंत्रित किया जा सके।
    - VAHAN - वाहन पंजीकरण सेवा को ऑनलाइन संचालित करने हेतु
    - SARATHI - ड्राइविंग लाइसेंस हेतु आवेदन करने के लिये ऑनलाइन पोर्टल
  - 'सेतु भारतम् कार्यक्रम' के तहत वर्ष 2019 तक भारत के सभी राष्ट्रीय राजमार्गों को रेलवे क्रॉसिंग से मुक्त किया जाएगा।
- सड़क सुरक्षा को एक गंभीर मुद्दा मानते हुए वर्ष 2015 में भारत ने ब्रासीलिया घोषणा (Brasilia Declaration) पर हस्ताक्षर किये थे और सड़क दुर्घटनाओं तथा मृत्यु दर को आधा करने के लिये प्रतिबद्धता ज़ाहिर की थी।

ब्रासीलिया घोषणा

- ब्रासीलिया घोषणा पर ब्राज़ील में आयोजित सड़क सुरक्षा हेतु द्वितीय वैश्विक उच्च-स्तरीय सम्मेलन में हस्ताक्षर किये गए थे।
- इस घोषणा का उद्देश्य वर्ष 2020 तक सड़क दुर्घटनाओं से वैश्विक मौतों और दुर्घटनाओं की संख्या को आधा करना है।
- संयुक्त राष्ट्र ने भी 2010-2020 को सड़क सुरक्षा के लिये कार्रवाई का दशक घोषित किया है।

ब्रासीलिया घोषणा की मुख्य बातें:

- हस्ताक्षर करने वाले सभी देशों को परिवहन के अधिक स्थायी साधनों जैसे कि पैदल चलना, साइकिल चलाना और सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करने के लिये परिवहन नीतियों का निर्माण करना चाहिये।
- सभी सड़क उपयोगकर्त्ताओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिये निम्नलिखित रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं:
  - कानूनों और प्रवर्तन में सुधार।
  - ढाँचागत परिवर्तनों के माध्यम से सड़कों को सुरक्षित बनाना।
  - यह सुनिश्चित करना कि सभी वाहनों में जीवन रक्षक तकनीक उपलब्ध है।

आगे की राह

- आवश्यक है कि लोगों के व्यवहार में परिवर्तन का प्रयास किया जाए। हेलमेट और सीट-बेल्ट के प्रयोग को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि अधिकांश सड़क दुर्घटनाएँ इन्हीं कारणों की वजह से होती हैं। लोगों को शराब पीकर गाड़ी न चलाने के प्रति जागरूक किया जाना चाहिये।
- दुर्घटना के पश्चात् तत्काल प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराना और पीड़ित को जल्द-से-जल्द अस्पताल पहुँचाने की व्यवस्था करना कई लोगों की जान बचा सकता है।
- दुर्घटना के पश्चात् आस-पास खड़े लोग घायल की जान बचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। आवश्यक है कि आम लोगों को इस कार्य के प्रति जागरूक किया जाए।
- सड़कों की योजना, डिज़ाइन और संचालन के दौरान सुरक्षा पर ध्यान देना सड़क दुर्घटनाओं में मौतों को कम करने में योगदान दे सकता है।
- सड़क सुरक्षा के बारे में जागरूकता फैलाने के लिये मास मीडिया और सोशल मीडिया का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिये।

दृष्टि The Vision

नोट :

आंतरिक सुरक्षा

सशस्त्र बल और महिलाएँ

संदर्भ

संपूर्ण वैश्विक इतिहास पर गौर करें तो ज़ाहिर होता है कि समाज में महिलाओं की केंद्रीय भूमिका ने राष्ट्रों की स्थिरता, प्रगति और दीर्घकालिक विकास सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मौजूदा समय में ऐसा कोई भी क्षेत्र शेष नहीं है, जहाँ महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न की हो। पुरुष प्रधान माने जाने वाले सैन्य क्षेत्र में भी महिलाओं की भूमिका काफी सराहनीय रही है और उन्होंने अतीत के कई युद्ध अभियानों में हिस्सा लिया है। भारतीय सशस्त्र बल में अपनी भूमिका के माध्यम से महिलाओं ने आत्मविश्वास और साहस के नए प्रतिमान स्थापित किये हैं। भारतीय सेना में महिलाओं के लिये स्थायी कमीशन को लेकर सर्वोच्च न्यायालय का हालिया निर्णय नारी सशक्तीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम माना जा रहा है। न्यायालय ने सरकार को आगामी तीन महीनों में शॉर्ट सर्विस कमीशन (SSC) की सभी महिला अधिकारियों को स्थायी कमीशन देने को कहा है। न्यायालय ने कहा कि महिलाओं को केवल शॉर्ट सर्विस कमीशन तक सीमित रखना संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा, जो कि देश के सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है।

क्या है विवाद ?

- लंबे समय तक सशस्त्र बलों में महिलाओं की भूमिका चिकित्सीय पेशे जैसे- डॉक्टर और नर्स तक ही सीमित थी। भारतीय सेना में महिला अधिकारियों की नियुक्ति की शुरुआत वर्ष 1992 से हुई। शुरुआत में महिला अधिकारियों को नॉन-मेडिकल जैसे- विमानन, रसद, कानून, इंजीनियरिंग और एक्ज़ीक्यूटिव कैडर में नियमित अधिकारियों के रूप में पाँच वर्ष की अवधि के लिये कमीशन दिया जाता था, जिसे समाप्ति पर पाँच वर्ष और बढ़ाया जा सकता था।
- वर्ष 2006 में नीतिगत संशोधन किया गया और महिला अधिकारियों को शॉर्ट सर्विस कमीशन (SSC) के तहत 10 वर्ष की सेवा की अनुमति दे दी गई, जिसे 4 वर्ष और बढ़ाया जा सकता था।
- वर्ष 2006 में हुए नीतिगत संशोधनों के अनुसार, पुरुष SSC अधिकारी 10 वर्ष की सेवा के अंत में स्थायी कमीशन का विकल्प चुन सकते थे, किंतु यह विकल्प महिला अधिकारियों के लिये उपलब्ध नहीं था।
- इस प्रकार सभी महिला अधिकारी कमांड नियुक्ति से बाहर हो गईं और वे सैन्य अधिकारियों को दी जानी वाली पेंशन की आवश्यक योग्यता को भी पूरा नहीं करती थीं, जो एक अधिकारी के रूप में 20 वर्षों की सेवा के पश्चात् ही शुरू होती है।

निर्णय का प्रभाव

- न्यायालय ने कहा है कि कई शौर्य व सेना पदक जीत कर महिलाएँ अपनी क्षमता साबित कर चुकी हैं, इसीलिये सेना में महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने के लिये मानसिकता में परिवर्तन की ज़रूरत है।
- सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से महिला अधिकारियों को अपने समकक्ष पुरुष अधिकारियों के समान ही सभी कमांड में नियुक्ति मिल सकेगी, जिससे महिला अधिकारियों के लिये उच्च रैंक और पदोन्नति के नए रास्ते खुलेंगे।

भारतीय सशस्त्र बल और महिलाएँ

- भारत के प्रत्येक क्षेत्र की सुरक्षा सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी भारत सरकार की है। सरकार ने इस कार्य के लिये देश में भारतीय सशस्त्र बल का गठन किया गया है।
- वर्तमान में भारतीय सशस्त्र बल के तहत सेना, नौसेना, वायु सेना और तटरक्षक बल को शामिल किया जाता है। ज्ञात हो कि तटरक्षक बल को सशस्त्र बल के रूप में वर्ष 1978 में स्थापित किया गया था।

- मौजूदा समय में केवल भारतीय वायु सेना ही लड़ाकू पायलटों के रूप में महिलाओं को लड़ाकू भूमिका में शामिल करती है। साथ ही भारतीय वायु सेना में महिला अधिकारियों का प्रतिशत भी अन्य शाखाओं से काफी अधिक है। आँकड़ों के अनुसार, भारतीय वायु सेना में तकरीबन 13.09 प्रतिशत महिला अधिकारी हैं।
    - वर्ष 2016 में तीन महिलाओं को फायटर पायलट के रूप में तैनात किया गया था। इनकी नियुक्ति पायलट प्रोजेक्ट के रूप में की गई थी।
- वहीं भारतीय थल सेना और नौसेना में महिला अधिकारियों का प्रतिशत अपेक्षाकृत काफी कम है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, भारतीय थल सेना और नौसेना में महिला अधिकारियों का प्रतिशत क्रमश: 3.80 और 6 है।
- जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यू.एस., ब्रिटेन, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्राँस, नॉर्वे, स्वीडन और इज़राइल जैसे देशों ने महिलाओं को युद्ध में भूमिका निभाने की अनुमति दी है।
- ज्ञात हो कि वर्ष 2000 में कमीशन प्राप्त करने वाली लेफ्टिनेंट कर्नल मिताली मधुमिता वर्ष 2010 में काबुल में भारतीय दूतावास पर हुए हमले के दौरान दिखाए गए अपने निर्विवाद साहस के लिये वीरता पुरस्कार (Gallantry Award) पाने वाली भारत की पहली महिला अधिकारी हैं।
- इसके अलावा डॉ. सीमा राव जो 'भारत की वंडर वुमन' के रूप में जानी जाती हैं, भारत की पहली महिला कमांडो ट्रेनर हैं, जिन्होंने भारत के 15,000 से अधिक विशेष बल के कर्मियों को प्रशिक्षित किया है।

महिलाओं को कॉम्बैट रोल देने में कठिनाइयाँ

- महिला-पुरुष के बीच कद, ताकत और शारीरिक संरचना में प्राकृतिक विभिन्नता के कारण महिलाएँ चोटों और चिकित्सीय समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। यह समस्या विशेष रूप से गहन प्रशिक्षण के दौरान होती है।
- इसके अलावा महिलाओं में अधिक ऊँचाई, रेगिस्तानी इलाकों, क्लीयरेंस डाइविंग और हाईस्पीड एविएशन (G-forces) जैसे कठिन इलाकों में नॉन-कॉम्बैट चोटें भी प्राय: देखी जाती हैं।
- कठिन युद्धों के दौरान लंबे समय तक तैनाती और महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर शारीरिक गतिविधियों के गंभीर प्रभाव को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका में विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है।
- महिलाओं को अपने परिवार विशेष रूप से अपने बच्चों से काफी अधिक लगाव होता है और इसलिये युद्ध स्थिति में लंबे समय तक अपने परिवार से अलग रहना महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

सक्षम हैं महिलाएँ

- महिलाओं को कॉम्बैट भूमिका की अनुमति देना देश में लैंगिक समानता की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम साबित हो सकता है।
- यदि ऐसा होता है तो इससे महिलाओं को उनकी उचित स्थिति और अधिकार प्राप्त करने में मदद मिलेगी, जो आखिरकार सामाजिक पदानुक्रम में उनकी स्थिति को बढ़ाने में मददगार होगा।
- यह वैज्ञानिक रूप से भी सिद्ध हो चुका है कि महिलाएँ अपने पुरुष समकक्षों की अपेक्षा तनाव को अधिक बेहतर तरीके से झेल सकती हैं।
- मनोवैज्ञानिक रूप से महिलाएँ इसके लिये तैयार होती हैं, उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण और समुचित वातावरण प्रदान किये जाने की आवश्यकता है।
- वास्तव में आज की दुनिया में युद्ध, हथियार और रणनीति में अद्भुत खोज और नवाचारों के साथ कौशल की एक नई प्रवृत्ति को प्राथमिकता दी गई है। यह अनुकूलता, चपलता, अनुशासन, त्वरित सोच, निपुणता, टीमवर्क और नेतृत्व जैसे गुणों की मांग करता है, जिसे पुरुषों और महिलाओं दोनों द्वारा समान रूप से हासिल किया जा सकता है।

निष्कर्ष

आज महिलाएँ संपूर्ण विश्व में सैन्य क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। भारत भी कॉम्बैट भूमिका में महिलाओं को शामिल करने की ओर तेज़ी से कदम बढ़ा रहा है। सेना में महिलाओं की भूमिका को बढ़ाने और इस विषय से संबंधित विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पहलुओं को समझने के लिये एक समेकित अध्ययन करने की आवश्यकता है जिसमें नागरिक समाज के अलावा स्वास्थ्य, महिला एवं बाल विकास तथा मानव संसाधन विकास (HRD) मंत्रालय को शामिल किया जाना चाहिये ताकि हम निकट भविष्य में इस क्षेत्र में अपेक्षित चुनौतियों का सामना करने एवं उनसे निपटने में सक्षम हो सकें।

सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम

संदर्भ

विवादों के अतीत पर बसा जम्मू-कश्मीर स्वयं में सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के तमाम रंग समेटे हुए है। कश्मीर को लेकर साहित्यकारों ने लिखा है, "अगर फिरदौस बर रूये ज़मी अस्त, हमी अस्तो हमी अस्तो हमी अस्त" (धरती पर यदि कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यही हैं)। जम्मू-कश्मीर दुनिया भर में न केवल अपनी खूबसूरती के लिये जाना जाता है, बल्कि यह समय-समय पर होने वाले राजनीतिक उतार-चढ़ाव के कारण भी विश्व स्तर पर चर्चा में रहता है। हाल ही में जम्मू-कश्मीर के दो पूर्व मुख्यमंत्रियों को राज्य के सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम (PSA) के तहत हिरासत में लिया गया, जिसके कारण PSA और जम्मू-कश्मीर एक बार पुन: चर्चा में आ गए हैं। ज्ञात हो कि यह अधिनियम प्रशासन को परीक्षण के बिना किसी भी व्यक्ति को 2 वर्ष के लिये कैद करने का अधिकार देता है। 5 अगस्त, 2019 को केंद्र सरकार ने जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाले अनुच्छेद 370 को क्षेत्र की प्रगति में बाधा मानते हुए समाप्त कर दिया था, साथ ही सरकार ने इस संबंध में क्षेत्रवासियों में किसी भी प्रकार की प्रतिशोध की भावना न होने का भी दावा किया था। हालाँकि अनुच्छेद 370 की समाप्ति के 6 महीनों बाद भी सरकार सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम (PSA) का अनवरत प्रयोग कर रही है, जिससे सरकार के दावों पर प्रश्नचिह्न लगता दिखाई दे रहा है। अंतत: आवश्यक है कि अधिनियम का विश्लेषण करते हुए इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा की जाए।

क्या कहता है सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम?

- जम्मू-कश्मीर सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम, 1978 एक निवारक निरोध (Preventive Detention) कानून है, इसके तहत किसी व्यक्ति को ऐसे किसी कार्य को करने से रोकने के लिये हिरासत में लिया जाता है जिससे राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था प्रभावित हो सकती है।
- इस अधिनियम के तहत व्यक्ति को 2 वर्षों के लिये हिरासत में लिया जा सकता है।
- यह कमोबेश राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के समान ही है, जिसका प्रयोग अन्य राज्य सरकारों द्वारा नज़रबंदी के लिये किया जाता है।
- इस अधिनियम की प्रकृति दंडात्मक निरोध (Punitive Detention) की नहीं है।
- यह अधिनियम मात्र संभागीय आयुक्त (Divisional Commissioner) या ज़िला मजिस्ट्रेट (District Magistrate) द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश से लागू होता है। साथ ही इस संबंध में आदेश पारित करने वाले अधिकारी को किसी भी तथ्य का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं होती है।

सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम में संशोधन

- जम्मू-कश्मीर राज्य विधानसभा ने वर्ष 2012 में अधिनियम में संशोधन कर इसके कुछ प्रावधानों को शिथिल बनाने का प्रयास किया था।
- संशोधन के तहत निरीक्षण से पूर्व नज़रबंदी की अवधि को कम किया गया था। पहली बार अपराध करने वाले लोगों के लिये नज़रबंदी की अवधि को 2 वर्ष से घटाकर 6 महीने कर दिया गया था। हालाँकि अधिकारियों के पास इस 6 महीने की अवधि में सुधार ने होने पर इसे 2 वर्ष करने का विकल्प अब भी मौजूद है।
- संशोधन के पश्चात् राज्य की कानून व्यवस्था को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाले लोगों को हिरासत में लेने संबंधी प्रावधान भी शिथिल किये गए थे। संशोधित प्रावधानों के अनुसार, पहली बार अपराध के लिये हिरासत में लिये गए व्यक्ति को 3 महीने के बाद रिहा किया जा सकता है।
- वर्ष 2012 से पूर्व तक जम्मू-कश्मीर के इस अधिनियम में 16 वर्ष से अधिक उम्र के किसी भी व्यक्ति को हिरासत में लेने का प्रावधान था, परंतु वर्ष 2012 में अधिनियम को संशोधित कर उम्र सीमा बढ़ा दी गई और अब यह 18 वर्ष है।

PSA लागू होने के पश्चात्

- सामान्यत: इस अधिनियम के तहत जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है तो गिरफ्तारी के 5 दिनों के भीतर ज़िले का DM उसे लिखित रूप में हिरासत के कारणों के बारे में सूचित करता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में इस कार्य में 10 दिन भी लग सकते हैं।
- हिरासत में लिये गए व्यक्ति को इस प्रकार की सूचना देना DM के लिये आवश्यक होता है, ताकि उस व्यक्ति को भी पता चल सके कि उसे क्यों गिरफ्तार किया गया है एवं वह इस संदर्भ में आगे की रणनीति तैयार कर सके। हालाँकि यदि DM को लगता है कि यह सार्वजनिक हित के विरुद्ध होगा तो उसे यह भी अधिकार है कि वह उन तथ्यों का खुलासा न करे जिनके आधार पर गिरफ्तारी या नज़रबंदी का आदेश दिया गया है।

- DM को गिरफ्तारी या नज़रबंदी का आदेश सलाहकार बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करना होता है, इस बोर्ड में 1 अध्यक्ष सहित 3 सदस्य होते हैं एवं इसका अध्यक्ष उच्च न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश ही हो सकता है। बोर्ड के समक्ष DM उस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व भी करता है और यदि व्यक्ति चाहे तो वह बोर्ड के समक्ष खुद भी अपनी बात रख सकता है।
- सलाहकार बोर्ड 8 हफ्तों के भीतर अपनी रिपोर्ट राज्य को देता है और रिपोर्ट के आधार पर राज्य सरकार यह निर्णय लेती है कि यह नज़रबंदी या गिरफ्तारी सार्वजनिक हित में है या नहीं।

अधिनियम का इतिहास

- जम्मू-कश्मीर में इस अधिनियम की शुरुआत वर्ष 1978 में लकड़ी तस्करी को रोकने के लिये की गई थी, क्योंकि लकड़ी की तस्करी उस समय एक बड़ी समस्या थी और इसके तहत गिरफ्तार लोग काफी आसानी से छोटी-मोटी सज़ा पाकर छूट जाते थे।
- 1990 के दशक में जब राज्य में उग्रवादी आंदोलनों ने ज़ोर पकड़ा तो दंगाइयों पर काबू पाने के लिये राज्य सरकार ने इस अधिनियम का प्रयोग काफी व्यापक स्तर पर किया।
- हाल के वर्षों में भी इस अधिनियम का कई बार प्रयोग किया गया है, वर्ष 2016 में हिजबुल मुजाहिदीन के आतंकी बुरहान वानी की गिरफ्तारी को लेकर हुए विरोध प्रदर्शनों के दौरान PSA का प्रयोग कर तकरीबन 550 लोगों को हिरासत में लिया गया था।

सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम की आलोचना

- शुरुआत से ही इस कानून का व्यापक तौर पर दुरुपयोग किया जाता रहा है, 1990 के दशक तक विभिन्न सरकारों द्वारा बार-बार अपने राजनीतिक विरोधियों पर इसका उपयोग किया गया। जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के बाद से जम्मू-कश्मीर सरकार ने अक्सर अलगाववादियों पर नकेल कसने के लिये PSA का प्रयोग किया है।
- सामान्य पुलिस हिरासत के विपरीत PSA के तहत हिरासत में लिये गए व्यक्ति को नज़रबंदी के 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके अलावा हिरासत में लिये गए व्यक्ति के पास आपराधिक अदालत से ज़मानत पाने के लिये आवेदन करने का अधिकार नहीं होता और वह व्यक्ति अपने प्रतिनिधित्व के लिये किसी वकील की सहायता भी नहीं ले सकता है।
- कुछ विश्लेषकों के अनुसार, बिना परीक्षण नज़रबंदी की अनुमति देना इस अधिनियम की आलोचना का सबसे मुख्य कारण है। PSA को पहले से पुलिस हिरासत में मौजूद किसी व्यक्ति अथवा हाल ही में ज़मानत पर लौटे किसी व्यक्ति पर भी लागू किया जा सकता है।
- PSA के तहत हिरासत में लिये गए व्यक्ति के समक्ष इस आदेश को चुनौती देने का एकमात्र तरीका बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका (Habeas Corpus Petition) है जिसे हिरासत में लिये गए व्यक्ति के परिवार वालों द्वारा दायर किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय को इस प्रकार की याचिका की सुनवाई करने का अधिकार है। हालाँकि यदि न्यायालय इस याचिका को खारिज कर देता है तो हिरासत में लिये गए व्यक्ति के समक्ष और कोई कानूनी विकल्प नहीं बचता है।
- इस अधिनियम में संभागीय आयुक्त अथवा ज़िला मजिस्ट्रेट द्वारा इस प्रकार के आदेश को पारित करना 'सद्भाव में किया गया' (Done in Good Faith) कार्य माना गया है, अत: आदेश जारी करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध किसी भी प्रकार की जाँच नहीं की जा सकती है।
- उल्लेखनीय है कि वर्ष 2018 में जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल ने इस अधिनियम में संशोधन किया था, जिसके अनुसार इस अधिनियम के तहत हिरासत में लिये गए व्यक्ति को अब राज्य के बाहर भी रखा जा सकता है।
- कई अवसरों पर इस अधिनियम का प्रयोग मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं और पत्रकारों पर किया गया है, जिसके कारण कई विशेषज्ञ इस अधिनियम को असंतोष के अधिकार के विरुद्ध मानते हैं।

आगे की राह

- वर्ष 2010 में केंद्र सरकार ने जम्मू-कश्मीर संबंधी विषयों का विश्लेषण करने के लिये वार्ताकारों के एक समूह का गठन किया था, इस समूह ने वर्ष 2012 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट तौर पर कहा था कि अधिनियम के तहत प्रशासन को दी गईं व्यापक शक्तियाँ इसके दुरुपयोग को आसान बनाती हैं। साथ ही समूह ने अधिनियम को लेकर निम्नलिखित सिफारिशें भी की थी:
  - नज़रबंदी की अवधि छोटे अपराधों के के मामलों में कम-से-कम एक सप्ताह और बड़े अपराधों के लिये एक महीने की होनी चाहिये।
  - किशोरों को PSA के तहत नज़रबंद नहीं किया जाना चाहिये।
- अधिनियम का प्रयोग कर बार-बार क्षेत्रीय प्रतिनिधियों को नज़रबंद करना, क्षेत्र में शांति व्यवस्था स्थापित करने और राजनीतिक हल खोजने में बाधा उत्पन्न कर सकता है।

नोट :